१९७५-७६

नीराजन

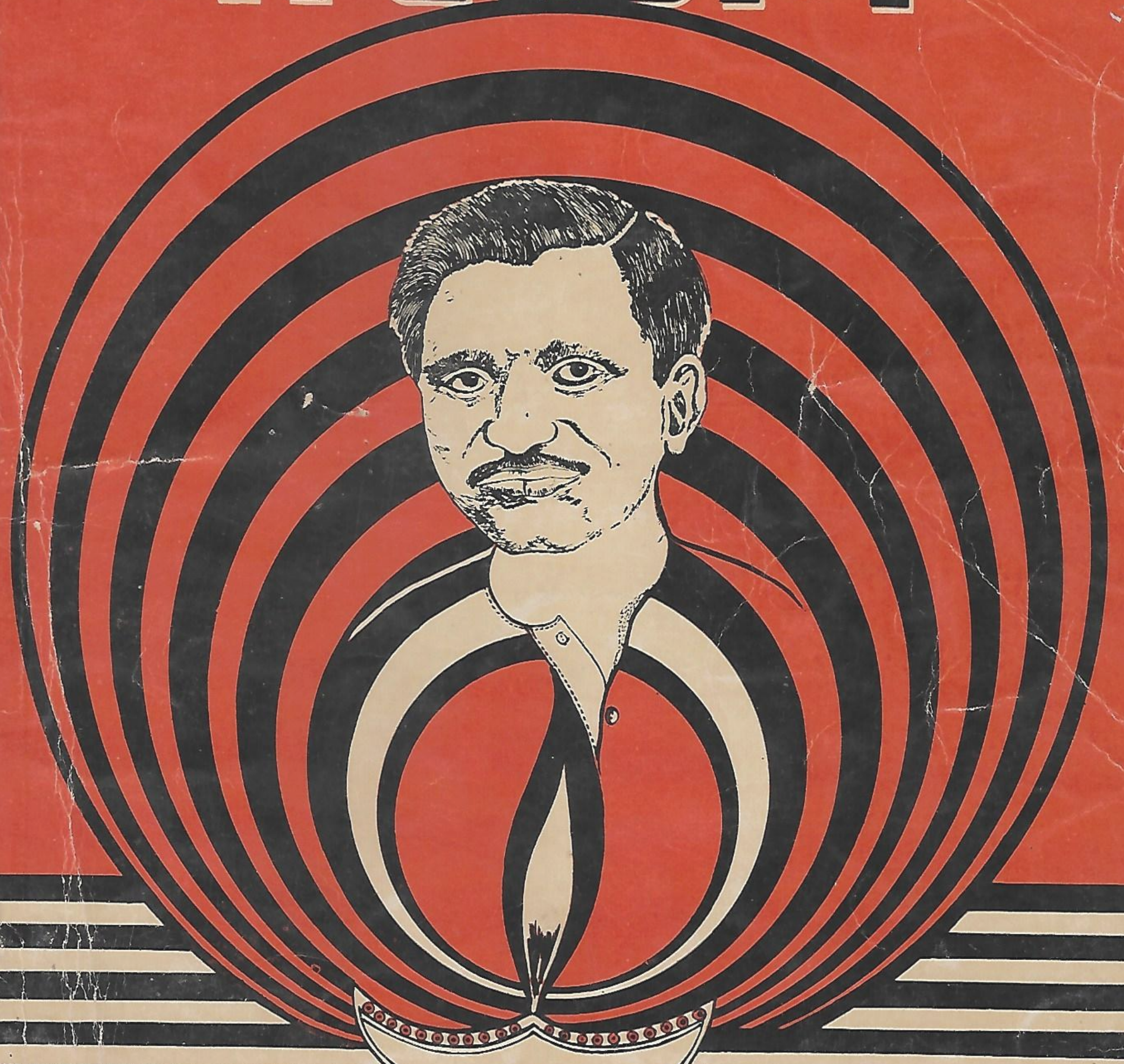

पं. दीनदयाल उपाध्याय स. ध. विद्यालय

“प्रचण्ड तेजोमय शारीरिक बल,
प्रबल आत्मविश्वास युक्त बौद्धिक क्षमता, एवं
निस्सीम भाव सम्पन्ना मनः शक्ति का अर्जन कर,
अपने जीवन को निस्पृह भाव से
भारत माँ के चरणों में अर्पित करना ही
हमारा परम साध्य है।”

नीराजकों से

(चन्द्रपाल सिंह, प्राचार्य)

पिछले सत्र के अन्त में तुम लोगों से विदा ले चुका था। परन्तु विधाता के विधान को कौन जान पाया है ? मुझे पुनः तुम लोगों के बीच लौटना पड़ा। कदाचित् इसी सत्र के लिये। वर्ष के प्रारम्भ में सारे ही देश में परिस्थिति बदली हुयी थी। उसका विद्यालय पर प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक था। इस बदली हुयी परिस्थिति में तुमने पूर्ववत् अपने व्रत का, अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार पालन किया इसके लिये तुम सभी साधुवाद के पात्र हो।

आचार्य भावे के शब्दों में वर्तमान समय अपने देश के लिये अनुशासन पर्व है। परन्तु उन्होंने अनुशासन के दो भेद किये हैं, एक आचार्यों का, दूसरा लादा हुआ। प्रथम कोटि का अनुशासन जो स्वयं के द्वारा, अपने लिये स्वीकृत होता है वही उत्तम अनुशासन है। जिस समाज में प्रथम कोटि का अनुशासन जितनी अधिक मात्रा में होता है वह समाज उतना ही अधिक उन्नत कहा जायेगा तथा प्रजातन्त्र उतना ही अधिक वहाँ सफल होगा। किसी भी देश के लिये, विशेषतः हमारे जैसे विकासशील देश के लिये तो अनुशासन न केवल रामबाण औषध है अपितु स्वास्थ्यवर्धक टानिक भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने देश में इधर कुछ समय से बढ़ती हुई अनुशासन हीनता के कारण ही अधिकांश विद्यालयों में न पढ़ाई हो पा रही थी और न कार्यालयों में कर्मचारी ही समय से पहुँचते थे। चोरबाजारी और भ्रष्टाचार का सारे क्षेत्रों में बोलबाला था। अतः शासन द्वारा कठोर कदम उठाकर अनुशासन स्थापित करना आवश्यक हो गया था। कड़वी औषधि के समान यह ऊपर से लादा हुआ अनुशासन भले ही अरुचिकर लगे, पर ऐसा न करना अराजकता को प्रश्रय देना था। पर शासन द्वारा लादा हुआ अनुशासन प्रजातन्त्र के स्वास्थ्य का सूचक नहीं है। अनुशासन वही स्थायी एवं व्यक्ति तथा समाज के लिये हितकर होता है जो नागरिकों द्वारा अपने कर्तव्यों को समझकर स्वयं स्वीकार किया होता है। इसी प्रकार के अनुशासन को जीवन का स्वाभाविक अंग बनाना शिक्षा का उद्देश्य है।

तुम राष्ट्रदेवता की आराधना के लिये अपने को तैयार कर रहे हो। इस समय आत्मानुशासन अथवा संयम के अभ्यास की बड़ी आवश्यकता है। जो व्यक्ति आत्मानुशासन से रहित है वह कभी कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। एक छात्र के जीवन में अनुशासन किस प्रकार होता है ? यदि वह विद्यालय तथा छात्रावास के (यदि वह छात्रावासीय है) नियमों का सहज भाव से पालन करता है, निर्धारित समय पर प्रत्येक कार्य आलस्य अथवा प्रमाद त्याग कर करता है, अपने अध्ययन, व्यायाम और मनोरंजन में ठीक संतुलन रखता है, अपने गुरुजनों की आज्ञा का सादर पालन करता है, अपने साथियों से सदैव शिष्ट व्यवहार करता है, अपने अध्ययन की ओर सचेष्ट रहते हुए देश व समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य ज्ञान को भी प्राप्त करते रहता है, सभी प्रकार के प्रलोभनों पर विजय पाते हुये अपने नैतिक चरित्र में किसी भी प्रकार की गिरावट नहीं आने देता, कभी असत्य का सहारा नहीं लेता, सदैव यथाशक्ति दूसरों की सहायता करने को तत्पर रहता है, अच्छे साहित्य के स्वाध्याय, कल्याणकारी कार्यों अथवा स्वस्थ मनोरंजन में अपने को व्यस्त रखकर गन्दे विचारों को पास फटकने नहीं देता, किसी भी

व्यसन का शिकार अपने को नहीं होने देता तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसा छात्र ही आगे चलकर जिस क्षेत्र में भी उसे कार्य करने का अवसर मिलेगा उसमें वह अग्रणी होगा तथा वही राष्ट्र देवता का सच्चा नीराजक होगा । मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा भी जीवन ऐसा ही आलोकमय बने जो दूसरों के जीवन पथ को आलोकित कर सके । पर इसके लिये तुम्हें सतत जागरूक रहना होगा, क्योंकि एक विचारक के शब्दों में, "सतत जागरूकता ही स्वतंत्रता का मूल्य है ।"

अनुक्रम

क्रमांक	रचना	विषय	रचनाकार	पृष्ठ
१.	मातृ शत्-शत् वन्दना	प्रार्थना		१
२.	सम्पादकीय	प्राक्कथन		२
३.	नन्दन-कानन	कविता	श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा	३
४.	जब इस जिन्दगी को·······	,,	श्री ओमशंकर	५
५.	चन्द्रमा का रहस्य	,,	श्री शिव स्वरूप मिश्र	७
६.	पंडित जी की पुण्य तिथि पर	,,	चि० शैलेन्द्र दीक्षित, दशम 'क'	९
७.	वीरों का आह्वान	,,	चि० महेश चन्द्र तिवारी, नवम 'क'	११
८.	हमारा प्यार देश और संदेश	,,	चि० कमल चन्द्र जैन, नवम 'ख'	१२
९.	हम प्रकाश के प्रहरी आए	,,	चि० हरिकान्त मिश्र, दशम 'क'	१३
१०.	अन्तर में दीपक बालो	,,	चि० प्रकाश शर्मा, दशम 'क'	१४
११.	हर दम बोलो मीठे बोल	,,	चि० संजय श्रीवास्तव, सप्तम 'क'	१५
१२.	शेरों के हम दाँत गिनेंगे	,,	चि० अनुपम त्रिवेदी, षष्ठ 'क'	१६
१३.	फिर अवतार लो	,,	चि० मनोज रस्तोगी, नवम 'क'	१७
१४.	विज्ञान के चमत्कार	,,	चि० इकबाल सिंह खुराना, सप्तम 'ख'	१८
१५.	मैं और मेरी माँ	,,	,, ,, ,,	१९
१६.	सूरज की भवितव्यता	,,	श्री हेमन्त कुमार दीक्षित	२०
१७.	राष्ट्र-भक्ति	नाटक	श्री ओमशङ्कर	२२
१८.	वेद ही विश्व के सभी प्रमुख धर्मों के स्रोत	लेख	चि० नवीन उपाध्याय, दशम 'ख'	२८
१९.	योद्धा - सन्यासी	,,	चि० अजय गोयल, दशम 'क'	३२
२०.	नेता जी सुभाष चन्द्र बोस	जीवनी	चि० पदम कुमार, नवम 'ख'	३७
२१.	·····और जब मैं सकुशल लौट आया	आत्म-कथ्य	चि० आशुतोष शर्मा, अष्टम 'क'	३९
२२.	करनी का फल	कथा	चि० वीरेन्द्र सिंह, सप्तम 'क'	४१
२३.	लापरवाह विनोद	कथा	चि० हेम कुमार जैन, अष्टम 'क'	४२

२४.	बलिदानी आशाराम त्यागी	परिचय	चि० विवेक महेश्वरी, सप्तम 'क'	४३
२५.	क्रान्ति-माला का एक प्रसून	इतिहास	चि० सुनील जैन, दशम 'क'	४५
२६.	मेरे दो प्रश्न ?	,,	चि० नीरज अग्रवाल, सप्तम 'क'	४७
२७.	ज़ीन	विज्ञान	चि० दुर्गेश कुमार, एकादश 'जीव वि०'	५०
२८.	विद्युत-जनित्र	,,	चि० अनूप रस्तोगी, नवम 'क'	५२
२९.	क्रीकेट के कीर्तिमान	लेखा	चि० संजय गर्ग, नवम 'क'	५३
३०.	ज्ञान-पहेली	पहेलियाँ	चि० विजय कुमार, नवम 'क'	५४
३१.	प्रधान मंत्री का बीस सूत्रीय कार्यक्रम			५५
३२.	वार्षिक आख्या		श्री प्राचार्य	५८
३३.	दशम कक्षा के प्रशिक्षार्थी			६१
३४.	जब सरकार ने हमें आमन्त्रित किया		श्री ओम शंकर	६२
३५.	विद्यालय के सम्बन्ध में		डा० शम्भुनाथ सिंह	६४

सफलता के शिखर की ओर........

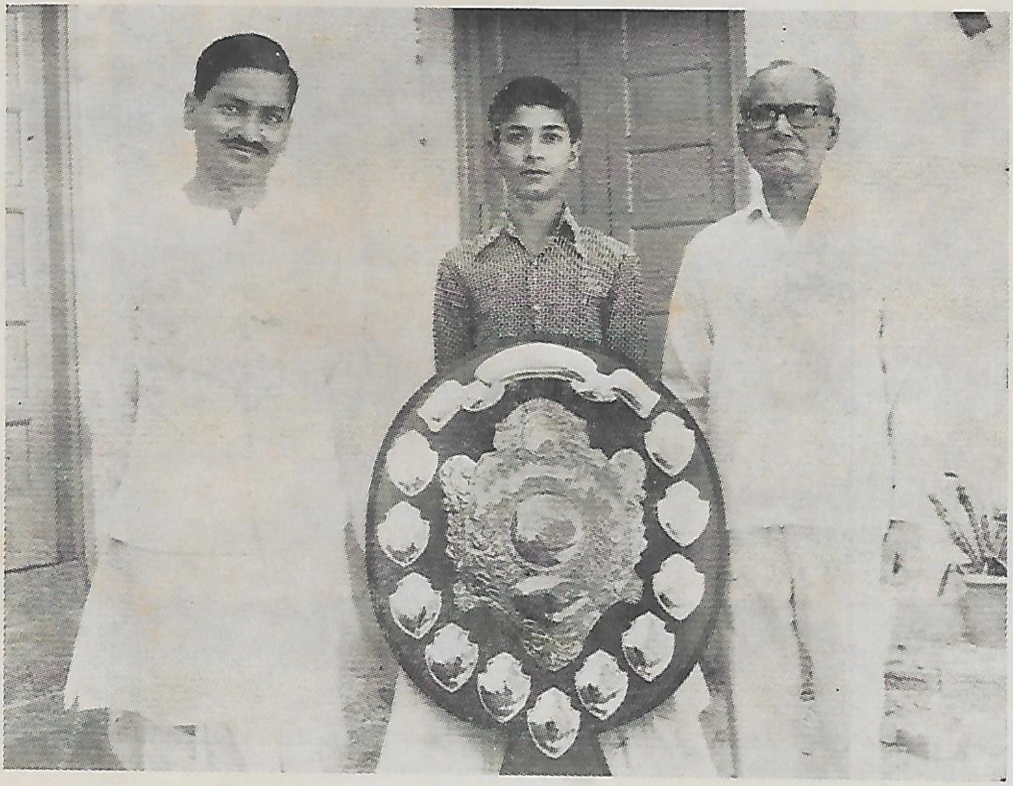

विजय-वैजयन्ती के साथ बायें — कक्षाचार्य ओमशङ्कर, मध्य में-
चि० शशि शर्मा, दाहिने — प्राचार्य श्री चन्द्रपाल सिंह

विद्यालय की संस्थापिका

श्रद्धेया सुशीला नरेन्द्रजीत सिंह उपाध्या 'बूजी'

कीर्ति शेषा ! लो नमन

श्रद्धा - सुमन

वन्दन हमारा आज फिर स्वीकार कर लो
चिर अभीप्सित कामना सम्भावना बन आ रही है
चल रहे हम अडिग व्रत लेकर तुम्हारा
दयामयि ! विश्वास कर लो
कीर्ति शेषा................ ।

नीराजन

पं० दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय, कानपुर—पत्रिका, वर्ष १९७५-७६

मातृ शत–शत वन्दना

दर्शनीया, पूजनीया मातृ शत—शत वन्दना।
कोटि कण्ठों से सुमुखरित हो हमारी प्रार्थना॥

मानसर योगी—शिला से, ब्रह्म—नद से सिन्धु तक
कोटि क्षेत्रों से जुटायें पत्र—फल और पुष्प-जल
भक्ति नवधा सूत्र में, बाँधी सुमन-आराधना॥१॥

धवल हिमगिरि के शिखर से, नीलगिरि की श्यामता
सिंधु के सिकता-कणों से, दीप्त मणिपुर की प्रभा
सप्त रंगों से सँवारी, इन्द्र—धनु की कल्पना॥२॥

सम्पादकीय

अपने आराध्य के श्री चरणों में सर्मपित करने के लिये 'नीराजन' का तृतीय पुष्प लेकर हम फिर प्रस्तुत हैं। हमारे अधरों पर स्मिति, चरणों में दृढ़ता और अन्तर में विश्वास की उर्मियाँ हिलोरे ले रही हैं, क्योंकि हमारे आदर्श हमको सिखा गये हैं कि सांसारिक झंझा हमारी परीक्षा के विषय तथा हमारा धैर्य उस परीक्षा का उपकरण-उपादन है।

प्रथम पुष्प के साथ हमने कहा था कि आज द्रोण, धौम्य और चाणाक्य ही स्वयं के अन्तर्तम में झाँकें, समस्याओं का हल स्वतः प्राप्त हो जायेगा। द्वितीय पुष्प के साथ हमने इस दिशा में किये गये प्रयासों की कतिपय फलवती उपलब्धियाँ भी दर्शायी थीं और आज अपने इस तृतीय सुमन की सुगन्धि में ही अपने स्वरों को तरङ्गायित करते समय हम पूर्ण आश्वस्त हैं कि हमारे अर्जुन, आरुणि तथा चन्द्र-गुप्तों ने हमारी अपेक्षाओं को शतधा भास्वर बनाकर हमें तोष प्रदान किया है, जिसका विस्तृत विवरण प्राचार्य श्री ने अपनी आख्या में प्रस्तुत किया है।

राष्ट्रीय स्पंदनों के साथ ही हमारा यह विद्या-केन्द्र भी उसी प्रकार स्पन्दित हुआ है, जिस प्रकार अङ्ग-झंकृति के साथ ही रोम सहज ही कण्टकित हो उठते हैं; किन्तु हम स्पष्ट कर चुके हैं कि धैर्य हमारा चिर-सहचर है, अतः अपने लक्ष्य से डिग जाना असंभव है। हमारा तो परम साध्य अपनी समस्त व्यक्तिगत शक्तियों को विधिवत् अर्जित कर भारत माता के श्री चरणों में सर्मपित कर देना ही रहा है, आज भी है और कल भी यथावत् रहेगा।

'अनुशासन' हमारा प्राण और 'व्यवस्था' हमारी जीवन-शैली है। इसी भाव को सहस्रशः जागृत करने का उपक्रम हम करते चले आ रहे हैं। विनम्र निवेदन उस परम पिता से है कि हमें शक्ति दे, विवेक और साहस भी, जिससे कि हम उस दुर्गम मार्ग को पार करते हुये अपने दिव्य लक्ष्य तक पहुँच जायें, जिस पर लोग प्रायः ही भटक जाया करते हैं।

नीराजन के पुराने अङ्कों की भाँति ही इसके संबंध में भी हमारा निवेदन यही है कि रचनाओं में रचनाकारों की सर्वथा मौलिकता का दम्भ तो नहीं, पर उनमें उनकी मधुमक्षिका-वृत्ति पर विश्वास अवश्य करना पड़ेगा।

अन्त में प्रस्तुत हैं आपके अपने ही उगते अंकुरों एवं उनके सिंचन-कर्ता मालियों के हृदयस्थ भाव, जिन्हें दोनों ने मिल-बैठकर चाव से सँवारा-सजाया है।

— सम्पादक

नन्दन-कानन

ज्ञानेन्द्र शर्मा, आचार्य

काव्य के झरोखे से इतिहास के पुरुषार्थी चित्र को कवि ने किस सिंह-दृष्टि से देखा है–पढ़िये ।

विश्व भर के
हरे-भरे उद्यानों को
झंझोड़ता उखाड़ता
हर एक को अपने मद का स्वाद चखाता
जब विदेशी आक्रमणों का प्रलयंकारी
झंझावात, उस नन्दन कानन में भी पहुँचा
जिसमें सोने की चिड़ियाँ रहतीं थीं ।।१।।

तब उसे स्वयं ही लगा
कि उसका आक्रोश
शायद कुछ कम पड़ रहा है
इस नंदन वन का विनाश करने के लिए ।
क्योंकि इसमें सुकुमार पौधे नहीं थे
जो हल्के हवाई झोकों में कुम्हालाने के आदी हों
इसमें तो ऐसे वृक्ष हैं
कि जिनकी आस्था रूपी जड़ें
जाने कितने सृष्टि और प्रलयों को झेल चुकी हैं
और फिर भी सनातन हैं ।।२।।

और उसने की उसकी पहली फुंकारों को
इन वृक्षों ने हँसते-हँसते ऐसे झेला
जैसे उस शत्रु का भी स्वागत कर रहे हों ।।३।।

उसने फिर दम भरा
और अपनी सामर्थ्य पर
कुछ और थपेड़े चलाए
और इस बार वह कुछ एक राज्य वृक्षों को
गिराने में सफल रहा ।
परन्तु
उसके पास ही एक ऐसा वृक्ष उसे दिखा
कि जिसके पत्ते भी गिरे नहीं
और पत्ते तो क्या,
फूल तक भी मुस्करा रहे हैं ।।४।।

बस उसका क्रोध उबल पड़ा
और फिर अपने सभी हथियार
उसने उस वृक्ष पर चलाए ।।५।।

एक हथियार ने फूल से कहा
"अभी तो तुम्हें खिलना है
जी भर कर जीवन जीना है
तुमको क्या जिद है ?
तुम अपना नाता अपनी आस्था से तोड़ दो
अपने धर्म की गंध को यदि तुम छोड़ दो
और हमारे प्रवाह में बह चलो
तो शायद तुम्हें जीवन जीने का अधिकार
मिल जाय और तुम्हारा संहार भी बच जाय ।।६।।

उन चार भव्य फूलों ने
केवल नकारात्मक स्वर का प्रयोग किया ।
और कहा कि हमें गर्व है
अपनी आस्था पर, अपनी गंध पर

और यह जीवन क्या है ?
कुछ दिनों का वस्त्र है
जो आत्मा ओढ़ती है
और फिर ऊब कर इनको छोड़ती है
फिर कोई नया वस्त्र पहनती है ।।७।।

बस इतना कहना था कि
उन फूलों की मुस्कान
भौतिक ईंटों में चिनवा दी गई
परन्तु उनकी आस्था की गंध
नंदन वन को सदा महका गई ।।८।।

इन फूलों का जनक
वह वृक्ष खड़ा – खड़ा
इनके बलिदान को देखकर
गर्व से फूला न समाया
और सोचने लगा कि मेरे जीते जी
मेरे आगे की पीढ़ी
बलिदान की वेदी को सँवार गई ।।९।।

और उसे लगा कि शायद
समय आ गया जब उसके
बलिदान की भी आवश्यकता पड़े,
परन्तु ऐसा न हुआ ।
क्योंकि
जब झंझावात फिर आया
तब तक उसके पौरुख थँक चुके थे
उसने सोचा कि पता नहीं
कितनी पीढ़ियों तक यह
दो आस्थाओं की लड़ाई चले
इसीलिए क्यों न यह
गुरुतर दायित्व किसी आस्थावान
सबल वृक्षों को सौंपा जाय ।।१०।।

और हुआ भी ऐसा ही
एक 'वैरागी वृक्ष' तैयार हो ही गया
उसने अपनी जड़ों को उस आस्था
से सींचा
और डटकर खड़ा हो गया
उस झंझावात का मद
चूर करने के लिए ।।११।।

इस वैरागी वृक्ष को पा
वह गुरु – वृक्ष संतुष्ट था
और उसे विश्वास हो गया
यह वर्षों से चलने वाला समर
इस नयी प्रेरणा और स्फूर्ति
से कई सदियों तक और
लड़ा जा सकेगा ।।१२।।

आज
हम उसी नन्दन में ही तो
चहक रहे हैं
और भी हम उसको
पहचान इसलिए नहीं पाते
क्योंकि यह हर तरफ
उजाड़ पड़ा है ।।१३।।

आओ
वह आस्था की गंध
जो चार फूलों ने छोड़ी है
उसे ही प्रेरणा स्रोत मानकर
हम बढ़ चले
इस उजाड़ वीरान जंगल को
अपनी सामर्थ्य से
फिर से नन्दन वन बनानें
जिसमें फिर से
सोने की चिड़ियाँ रह सकें ।।१४।।

"जब इस जिन्दगी को……."

ओम शंकर, आचार्य

एक सैनिक जब युद्ध के लिए सिद्ध होता है, उस समय की भावात्मक उद्भावना ।

जब इस जिन्दगी को मौत का सन्देश भाता है,
धरा धँसती गगन हँसता जलधि में ज्वार आता है,
प्रकंपित मेरु-श्रृंगों से अनल का वेग चलता है,
धवल-निर्झर समूहों से गरल उद्वेग ढलता है,
अमा गाती प्रलय के गीत, चल तूफान आता है ।।१।।
कि जब……………

चटक कर चूड़ियां हँसती सुहागिन मांग घुलती है,
सीपी मोतियाँ ढलतीं, बिखर कच-राशि खुलती है,
सपन-स्वर्णिम सलोने स्नेह के अब आह भरते हैं,
नयन खुल शून्य में फिर स्नेह—मिश्रित चाह झरते हैं,
विरह गाता व्यथा के गीत, अम्बर गुनगुनाता है ।।२।।
कि जब……………

सिहर उठते हृदय के तार, तन्द्रिल गीत मिटते हैं,
सजग होते सभी संभार, रंजित स्वप्न फटते हैं,
पवन से चेतना—दायी सन्देशा मौन मिलता है,
मचल उठते पुलक कर प्राण यम का द्वार खुलता है,
उषा करती लहू में स्नान, ताण्डव कसमसाता है ।।३।।
कि जब……………

स्वयं नाराच लेकर सव्य साची मुस्कराते हैं,
सरल मृदु-हास मय-आनन पितामह झाँक जाते हैं,
उठती लेखनी फिर से महात्मा व्यास के कर में,
कि सुख-दुख में सरल मन हो बढ़े हैं पार्थ फिर रण में,
चला रथ आज भगवा व्योम में फिर झलमलाता है।।४।।
कि जब...............

न है यह मौत, यह तो सत्य का शाश्वत निमन्त्रण है,
समय का यह सरल परिणाम, यह नरका नियंत्रण है,
कि नर हुंकार उठता है, सहज सन्देश पा इसका,
सहज ही ग्लानि करता यम, अनोखा धैर्य लख जिसका,
कि विक्रम जोश भरता है, प्रबल तूफान आता है।।५।।
कि जब...............

चन्द्रमा का रहस्य

शिव स्वरूप मिश्र, आचार्य

बच्चों के लिये लिखी गयी सरलतम शैली में प्रातिभ कवि की एक व्यवस्थित सूझ।

किस लिए निरन्तर भ्रम में,
राकेश मुझे रखते हो,
अपना रहस्य मुझको तुम,
क्या नहीं बता सकते हो ?

देवता वेद कहते हैं,
क्या देव तुम्हें मैं मानूँ ?
निशि – वासर पूजा करके,
जीवन में सफल बना लूँ ?

पर हृदय – चेतना कहती,
छल देव नहीं करता है,
छलकर शशि गौतम ऋषि को,
देवत्व नष्ट करता है।

नारीत्व अपहरण संगी,
बन कर जिसे शान्ति होती है,
बस उसे देवता कहने–
में मुझे ग्लानि होती है।

गुण देख, रीझ, सुन्दरता–
की खान इन्दु को माना,
सुकुमार सुमुख तरुणी का,
उपमान तुम्हीं को माना।

हो कहीं सुन्दरी – चर्चा,
उपमा तेरी देता था,
पर दुःख मुझे अब होता,
क्यों ध्यान नहीं देता था।

तुम पर जो चमक दीखती,
है रवि प्रकाश की लीला,
मत भेद छिपाओ मुझसे,
क्यों रंग पड़ रहा पीला।

तुम पर प्रकाश जो पड़ता,
प्रावर्तन उसका करते,
अपनी इस कला कारिता,
का खुला प्रदर्शन करते।

पर हृदय तुम्हारा निर्मल,
धिक्कार ग्लानि करता है,
जिसका प्रतीक काला पन,
राकेश बीच दिखता है।

तुम सुन–सुन अपनी उपमा,
खुद ग्लानि किया करते हो,
निशि – वासर घट–बढ़ अपने,
को शान्त किया करते हो।

अब सावधान हो जाओ,
तुमको कोई कुछ माने,
पर हम मानव आते हैं,
तुम पर अधिपत्य जमाने।

"पंडित जी की पुण्य तिथि पर"

शैलेन्द्र दीक्षित, १० 'क'

[अजातशत्रु पंडित दीन दयाल उपाध्याय को भावुक किशोर-हृदय की हार्दिक श्रद्धाञ्जलि]

एक आँधी सी उठी, सूरज गगन में खो गया,
आज भारत के लिये, दिन में अँधेरा हो गया।

छा गया दुःख - दर्द का वातावरण है लोक में,
शान्तिप्रिय संसार सब डूबा हुआ है शोक में।

देश का दुर्भाग्य छिपकर, वार अपना कर गया,
हिन्द सागर हिन्द के ही, आँसुओं से भर गया।

लुट गया मेरा बगीचा, पात - पात बिखर गया,
आज इस युग का विचारक, संत हमसे हर गया।

स्तब्ध सारा देश है, टूटा हिमालय का शिखर,
है भागीरथी के बिना, बेचैन गंगा की लहर।

आज उनके ही बिना सुनसान यह ऋतुराज है,
हम न केवल रो रहे, रोता समग्र समाज है।

हाय ! पण्डित जी तुम्हें, हमने न समझा खो दिया,
यह अभागा देश फिर से, आज भर-भर रो दिया।

वह गया ऐसी जगह, अब लौटने वाला नहीं,
अब हमारे पास उसकी, भस्म है ज्वाला नहीं।

अब न देखेंगे कभी, उसकी मधुर मुस्कान को,
आधुनिक संसार के, सबसे बड़े इन्सान को ।

डूबती है धर्म की नौका, सभी जन मौन हैं,
जो करे उद्धार अब, ऐसा जगत में कौन है ।

हाय ! अब पच्चीस सितम्बर को निहारेंगे किसे,
हम सभी जन अब, 'विचारक' कह पुकारेंगे किसे ।

न्याय - प्रेमी पूर्ण सन्यासी, निडर वह वीर था,
'दीन दयाल' समग्र भारत की अजब तस्वीर था ।

ओस - सा शीतल सुकोमल, फूल सा श्रृङ्गार था,
किन्तु अवसर पर वही, जलता हुआ अंगार था ।

आज भारत ही नहीं, सारा जगत है रो रहा,
मुरझा गया एक फूल, सारा बाग सूना हो रहा ।

किन्तु दिव्य सुगन्ध उसकी नष्ट हो सकती नहीं,
अमरत्व के ही साथ उसकी गूंज खो सकती नहीं ।

बुझ गया दीपक, मगर आलोक अब भी शेष है,
मर गए 'पंडित जी' मगर उनका अमर संदेश है ।

है उन्हीं की सीख, संकट में न हम 'आहें' भरें,
जिस तरह हो आज उनका स्वप्न हम पूरा करें ।

"वीरों का आह्वान"

महेश चन्द्र तिवारी, नवम 'क' कला

किशोर–कामना कविता के शिशु रूप में ।

हम स्वतन्त्रता की वेदी पर, रण–वीरों का आह्वान करें ।
इस महा प्रलय की वेदी पर, हथकड़ियों का आह्वान करें ।
हम नींद त्याग कर जाग उठे, इस मोह–निशा को त्याग उठे ।
अपने पुरखों के चरणों पर, न्योछावर अपना गात करें ।
इस काल–रात्रि की वेला में, रण–वीरों का आह्वान करें ।
हम स्वतन्त्रता की वेदी पर, रण–वीरों का आह्वान करें ।
आज विचारें अपने मन में वे ही आदर्श हमारे हैं ।
जिनके तपः पूत जीवन से आलोकित नभ–तारे हैं ।
फिर क्यों मोह–पाश में फँसकर अपना जीवन व्यर्थ करें हम ।
क्षण–भङ्गुर अपने शरीर को भारत माँ के अर्थ धरें हम ।
युग–युग से हम यही कामना लेकर जीते आये अब तक ।
हे माँ अपने लिए कभी हम जियें नहीं संकल्प करें हम ।
और देश की पावन भू पर नव–युग का आह्वान करें हम ।

हमारा प्यारा देश और संदेश

कमल चन्द्र जैन, नवम 'ख'

[बाल-गंभीरता का एक सुन्दर उदाहरण]

नील गगन से लेकर तल तक,
गिरि से सागर की लहरों तक,
सभी दिशायें गूँज रही हैं,
वायु लहरियां गूँज रही हैं,
भारत देश हमारा ही है,
यह संदेश हमारा ही है—
कि, ओ दुनिया के रहने वालो,
धन, वैभव में बहने वालों,
सुन लो, समय बताता है यह,
धन-मद क्षण का नाता है यह,
इसमें बह कर नष्ट न होना,
इसमें पड़ कर कष्ट न लेना,
सत्य तथ्य है मोक्ष जगत का,
सत्य पक्ष सतोष जगत का,
समझो इसे इसे ही सोचो,
कभी न माया-मद में लोटो,
आओ प्यारे ! गुरू-शरण में,
भागो प्यारे ! जरा मरण से ।।

हम प्रकाश के प्रहरी आए !

हरिकान्त मिश्र, दशम 'क'

काव्य-प्रतियोगिता में पल्लव वर्ग के अन्तर्गत प्रथम पुरस्कार-प्राप्त कविता ।

तम का दर्प चूर्ण करने को
हम प्रकाश के प्रहरी आए ;
मानवता को मार्ग दिखाने–
ज्योति पुंज को सम्मुख लाए ।

हिन्दु–राष्ट्र की संस्कृति को हम
उच्च शिखर पर पहुँचा लें;
फैला है अज्ञान–तिमिर जो–
सूर्य–रश्मि बन हर डालें ।

और देश की दरिद्रता को
बल – वैभव से आज हरें ;
"करें देश की उन्नति" ऐसा–
मन में निज संकल्प करें ।

घट–घट में हम ज्ञान–शिखा बन
उज्ज्वल, मंगल दीप जलाएँ;
तम का दर्प चूर्ण करने को–
हम प्रकाश के प्रहरी आएँ ।

अपने ही कोमल हाथों से
जीवन का निर्माण करें;
भस्म हो रही और ढह रही–
संस्कृति का उत्थान करें ।

अपने ही अद्भुत साहस से
कीर्ति–पताका निज फहराए;
तम का दर्प चूर्ण करने को–
हम प्रकाश के प्रहरी आएँ ।

अंतर में दीपक बालो !

प्रकाश शर्मा, दशम 'क'

काव्य–प्रतियोगिता में पल्लव–वर्ग के अन्तर्गत द्वितीय पुरस्कार–प्राप्त कविता ।

कल्मष का तन जो हर डाले
अंतर में वह दीपक बालो !

नई चेतना जो लाता हो–
बढ़कर उसको कण्ठ लगा लो ।
जो दूर कर सके भव बाधा–
बीज वही तुम मन में डालो ।

कल्मष का तम जो हर डाले,
अंतर में वह दीपक बालो !

है वह प्रकाश अन्यत्र नहीं,
है वही पल रहा अंतर में ।
जो जगा सके निज आत्मा को,
अंतर में भाव वही पालो ।

कल्मष का तम जो हर डाले,
अंतर में वह दीपक बालो !

है स्वार्थ - सिद्धि की नहीं जिसे–
चिंता होती अपने मन में ।
वह ही समाज का रक्षक है,
तुम बढ़कर उसको मित्र बना लो।

कल्मष का तम जो हर डाले,
अंतर में वह दीपक बालो !

जब एक बार जगेगा जग–
सब इसी मार्ग पर आएँगे ।
इसीलिए यह सिंह - गर्जना–
सुन लो सारी दुनिया वालो ।

"कल्मष का तम जो हर डाले,
अंतर में वह दीपक बालो !"

हरदम बोलो मीठे बोल !

संजय श्रीवास्तव, सप्तम 'क'

काव्य–प्रतियोगिता में अकुर-वर्ग के अन्तर्गत प्रथम पुरस्कार–प्राप्त कविता।

हरदम बोलो मीठे बोल !

बोली से हम मनुज कहाते,
बोली ही जीवन का रस है।
अक्षय - कोष समाया इसमें,
इसमें ही तो 'सरबस' है।

मधुर बोल से जग अपनाओ,
मधु - वाणी से प्रेम सिखाओ।
वाणी ही जीवन का मोल,
हरदम बोलो मीठे बोल।

मधु - वाणी से ही 'बूजी' ने–
दीनदयाल का 'दीप'* जलाया।
मधु वाणी से ही कोकिल ने–
जग में अपना यश फैलाया।

मधु वाणी में प्रेम छिपा है,
कोमलता का भाव छिपा।
गाँठ हृदय की तू निज खोल,
हरदम बोलो मीठे बोल।

मधु वाणी तो अमृत - धारा,
इस पर हमने तन-मन वारा।
मधु वाणी से अमृत घोल,
हरदम बोलो मीठे बोल !

*'दीप' से कवि का आशय यहां दीनदयाल विद्यालय रूपी दीप से है !

शेरों के हम दाँत गिनेंगे !

अनुपम त्रिवेदी, षष्ठ 'क'

काव्य–प्रतियोगिता में अंकुर-वर्ग के अन्तर्गत द्वितीय पुरस्कार प्राप्त कविता ।

शेरों के हम दाँत गिनेंगे,
कर्त्तव्यों से हम नहीं डिगेंगे ।
"अगर डिगे तो मर जाएँगे"–
ऐसा प्रण हम आज करेंगे ।

छोटा सा था बाल भरत वह–
शकुंतला का सुत कहलाया ।
शेरों के गिन दाँत शौर्य फिर–
सारे जग को दर्शाया ।

हम भी वैसे वीर बनेंगे,
शेरों के हम दाँत गिनेंगे !

वीर शिवा ने भी दुश्मन को–
था जमकर ललकारा ।
हमने भी वैसा बनने का
प्रण अपने मन में धारा ।

वीर शिवा से बली बनेंगे,
शेरों के हम दाँत गिनेंगे !

बोल उठी झाँसी की रानी–
नाम था जिसका लक्ष्मीबाई ।
अंग्रेजों के ऊपर मानो –
प्रलय - घटा सी वह छाई ।

हम भी वैसे कार्य करेंगे,
शेरों के हम दाँत गिनेंगे !

सरहद पर आए जो दुश्मन,
उसको हम ललकारेंगे ।
और राष्ट्रवेदी पर अपना
तन - मन - धन वारेंगे ।

कर्त्तव्यों से नहीं डिगेंगे,
शेरों के हम दाँत गिनेंगे !

फिर अवतार लो.......

मनोज रस्तोगी, ९ 'क'

[एक आह्वान गीत, किशोर की कलम से]

आज फिर अवतार ले,
तुलसी ! पधारो इस धरा पर ।

देश की इस दुर्दशा को,
और इस गतिहीनता को,
राष्ट्र में छाई प्रगति स्तब्धता,
भ्रष्ट होते जा रहे दुष्कर्म को,
त्याग से वैराग्य होता देख फिर से,
तुम निहारो इस धरा पर,
आज फिर अवतार ले,
तुलसी ! पधारो इस धरा पर ।

आज देश की काल रात्रि में,
भव बंधन के मोह पाश में,
तुम चमको बन प्रबल सूर्य सम,
जिससे सुधरे यह जीवन-क्रम,
आज निज संदेश दे फिर,
स्वर्ग लाओ इस धरा पर,
आज फिर अवतार ले,
तुलसी ! पधारो इस धरा पर ।

"विज्ञान के चमत्कार"

इकबाल सिंह खुराना, सप्तम 'ख'

[विज्ञान के सम्बन्ध में बाल-मन की भावनायें ।]

पहले पैदल चलते थे,
अब मोटर और विमान चले ।
अब रहा नाव का काम नहीं,
स्टीमर औ जलयान चले ।
घर पर ही बैठे - बैठे हम,
दुनियां की खबरें सुनते हैं ।
बी० बी० सी० सीलोन या कि,
हम विविध भारती सुनते हैं ।
गर्मी में पंखे कूलर हैं,
ठण्डक में हीटर जलते हैं ।
यह चमत्कार विज्ञानी है,
अब चलो चाँद पर चलते हैं ।

मैं और मेरी भारत माँ

इकबाल सिंह खुराना, सप्तम 'ख'

[अपनी संस्कृति के प्रति सुकोमल भाव ।]

माता है मेरी भारत माँ,
औ पिता हमारा ईश्वर है,
संसार कहे कुछ भी हमको,
पर देख रहा जगदीश्वर है ।
कि, हमने दुनियाँ को ज्ञान दिया,
हमने दुनियाँ को पाला है,
हमने मानव के लिये पिया,
विष का जहरीला प्याला है ।
हम भारत के रहने वाले,
यह भारत वर्ष हमारा है,
दुनियाँ कुछ भी चाहे कह ले,
नीला आकाश हमारा है ।
अपनी धरती अपना अम्बर,
हमने माँ का है दूध पिया,
हर बार सफल जीवन जीकर,
फिर से इस पर ही जनम लिया ।

सूरज की भवितव्यता

हेमन्त कुमार दीक्षित 'विश्वबन्धु', एम०ए०, बी०एड०

१४ सितम्बर : हिंदी-दिवस के अवसर पर

भाषा वह
जो हृदतन्त्री के
तार करे झंकृत,
वाणी का जो कवच खोल दे,
होने दे साक्षात भाव से;
जिसमें मिट्टी का सोंधापन,
जिसमें शिशुओं सा भोलापन,
बोल रही होंगी जिसमें धड़कनें वक्त की !
लिए कुदालें
या कि पकड़कर हल की मूठें
बहा रहे जो नित्य स्वेद-कण
भाषा तो है–
उनकी खुशियाँ, उनका क्रंदन !
उनका अक्षत, उनका वन्दन !
दीर्घतपा–
जो कभी नहीं की गई अधिष्ठित,
इतने पर भी–
कोटि–कोटि कण्ठों की वाणी,
पाई जिसने खुद मृगेन्द्रिता !
भाषाओं की राजनीति की दल-दल वाले–
वक्र समय में–
ऐसी बोली का अभिनन्दन !
ऐसी बानी का अभिनन्दन !!

बनी क्रीतदासी
सदियों से रही पददलित,
शोषित – लुण्ठित;
थोप गया छल
ब्रह्मराक्षस सा मैकाले !
दूधधुली संस्कृति से जैसे–
खेल गया वह जुआँ !
जकड़ गया 'पहिचान' हमारी–
नागपाश में !
काट गया डैने भावों के !!

वह गुलाम युग की विडम्बना–
जब कलमों को घिसने वाली
शिक्षा पर थे हम इतराए !
बोए थे विष-बीज–
हीनता की त्रासद पीड़ा के;
अँकुरा वे शीघ्र–
हमारी छाती पर ही !
टूट गई थी कमर
बिरासत की ही जैसे !
आत्म - पराजित,
श्लथ - निर्वासित,
माथे पर थी खिंची लकीरें घोर ग्लानि की;

हाथों में ऐसी वल्गाएँ-
जो टूटी थीं !
ऐसे ही अंधे चौराहे पर तब रुक कर–
हमने कुछ संकल्प गढ़े थे !
तिमरावृत रजनी में भी–
नूतन प्रभात के स्वप्न मढ़े थे !
अपहृत अस्तित्वों के–
ढूंढ़े तो थे कुछ पैमाने
धर्म चक्र (जो दिव्य कल्पना थी अशोक की)
एक तिरंगा,
वस्त्र स्वदेशी,
ढूंढ़े तो थे कुछ पैमाने !

बात उठी थी तब भाषा की ।
सबने एक कण्ठ से मानों दुहराया था–
आस पास जो आम आदमी के मँडराए,
जिसमें गुथी हुई हो संस्कृति,
जिसमें धरती का सोंधापन
जिसमें शिशुओं सा भोलापन,
ऐसी भाषा हिंदी ही है ।
नहीं मात्र यह बोली-बानीं;
यह भावों का अर्घ्य,
धूप–दीप–नैवेद्य–
और है चन्दन-पानी !
इसको ही हम अपनाएँगे,
संविधान की आत्मा में–
रच–बस जाएगी यह जन-भाषा ।

तबसे लेकर
आजादी की अट्ठाइस कड़ियाँ गिन आए
किन्तु नहीं हम
अपनी शपथ पूर्ण कर पाए ।
दक्षिण से कुछ उकसाए हाथों ने
ताने मुक्के
कसीं भृकुटियाँ, ट्रेनें रोकीं–
'डाउन विथ हिन्दी' कह कहकर

और नहीं वह
पूर्ण राजभाषा बन पाई !
आयोगों की आज परिक्षाएँ जब होतीं,
हिन्दी का स्नातक–
चुनता है एक अजनबी माध्यम !
पहिचानों उसकी पीड़ा को,
कुछ तो कसका करता होगा उसके अंदर ?
एक मूर्ति ढहाता है–
मानों वह अपने अंदर !
वही उपेक्षा – नफरत-पीड़ा !
कुछ तो डस जाता है उसको

चला गया जो
सात समुन्दर पार
जाल अपना समेटकर
उस बौनी काया का
इतना लम्बा साया–
जो न छोड़ सकता है हमको !
(या कि हम स्वयं छोड़ते उसे नहीं हैं ?)
और चाहते
शायद फिर से–
मिट जाएँ 'पहिचान' हमारी,
गुम जाएँ 'संकल्प' हमारे,
दफना दें हम अपने सपने,
हो जाए अपहरण–
हमारे 'अस्तित्वों' का !

अंधकार को किन्तु चीर कर
नन्हीं एक किरण बढ़ आई ।
उसका चाहे गला घोंट दो
किन्तु एक पल वह भी होगा–
धरती के इस रंग मंच पर
सूरज होगा !
हिन्दी का वह सूरज होगा !!
उससे आँख मिलाना भी–
तब तुमको दूभर होगा !!!

राष्ट्र-भक्ति

ओम शंकर, आचार्य

[लेखक की एक अप्रकाशित कृति 'युग पुरुष-आचार्य चाणक्य' का एक उद्‌बोधक अंश।]

दृश्य—३

(ग्रीष्मकालीन संध्या की अस्ताचलगामी रश्मियाँ महामात्य राक्षस के उद्यान-पुष्पों के साथ आँखमिचौनी खेलकर विदा ले रही हैं। पक्षीवृन्द अपने-अपने नीड़ों में परमआनन्द का अनुभव कर रहे हैं। उनकी चहचहाहट महामात्य राक्षस को न जाने क्यों बार-बार दुःखी कर देती है। वह अपने श्वेत परिधान में बिना किसी राज्य-चिन्ह के, बड़े अनमने से होकर टहल रहे हैं। मुखमुद्रा अत्यन्त गम्भीर, मस्तिष्क की नसें विशेषरूप से तनी हुई और कभी-कभी मुट्ठियाँ भी भिंच जाती हैं। उद्यान के एक कोने से अपने गैरिक परिधान में आचार्य चाणक्य का प्रवेश। टहलते हुए महामात्य के पीछे आकर अत्यन्त सधे हुए पैरों से चलने लगते हैं। राक्षस अपने विचार-प्रवाह में स्वयं ही बायें हाथ पर दाहिनी मुट्ठी पटककर बोल उठता है।)

राक्षस — ……………आखिर करूँ क्या…………?

(तुरन्त उत्तर में चाणक्य बोल पड़ते हैं।)

चाणक्य — राष्ट्र रक्षा।

(राक्षस अप्रत्याशित व परिचित सा स्वर सुनकर चौंक उठता है और तुरन्त पीछे मुड़कर ध्यान से देखकर कुछ पहचानने का प्रयास करता हुआ पूछता है।)

राक्षस — कौन ? विष्णु गुप्त……………।

(दोनो हाथों से चाणक्य को खींचकर सीने से लगा लेता है। दोनों मित्र बहुत समय बाद मिलकर गाढ़ालिंगन में बंध जाते हैं। चाणक्य उत्तर देता है।)

चाणक्य — हाँ ! महामात्य राक्षस।

राक्षस — किन्तु तुम्हारा यह वेश कैसा ?

चाणक्य — यह सन्यासी का वेश है महामात्य।

राक्षस — इतना तो समझता हूँ आचार्य विष्णु गुप्त ! किन्तु असमय सन्यास कैसा ?

चाणक्य — महामात्य ! सन्यासाश्रम के लिये 'असमय' कोई नहीं है। यह देश-काल की आवश्यकता और अपेक्षा पर निर्भर है।

राक्षस — (कुछ मुस्कराकर) किन्तु आपकी तो सभी परिस्थितियाँ ठीक हैं, आचार्यप्रवर।

चाणक्य — मेरी परिस्थितियाँ देश से इतर नही हैं, आर्य राक्षस ! गम्भीरता पूर्वक विचार करें कि आज चतुर्दिक वातावरण कैसा विषाक्त होता जा रहा है ?

राक्षस — (गंम्भीर होकर) बिल्कुल ठीक कह रहें हैं आप, किन्तु हम आप कर ही क्या सकते हैं ?

चाणक्य — एक महान साम्राज्य के महामंत्री से इस प्रकार के उत्तर की आशा नहीं थी मुझे…………

(बीच में ही टोककर)

राक्षस — आचार्य विष्णुगुप्त ! मैं इस समय एक पकार से निष्कासित महामात्य हूँ।

चाणक्य — (आश्चर्य से) क्यों ?

राक्षस — देश की गंभीर परिस्थितियों और मगध पर घिर रहे भावी संकट का संकेत करने के परिणामस्वरूप मुझे यह निष्कासन दण्ड मिला है, आचार्य।

चाणक्य – (क्रोध से) नंद इतना बावला हो गया है। उसे अपने परमभक्त महामात्य की सलाह तक कसैली लगने लगी। (जोर से) घोर अनर्थ !

राक्षस – (कुछ रुखाई से) आचार्य चाणक्य ! मैं अब भी राज्यान्न खाता हूँ, अतः राजनिन्दा सुन भी नहीं सकता। आप यदि सम्राट महापद्मनन्द के प्रति आदर पूर्वक नहीं बोल सकते तो कृपाकर मौन रहिये।

चाणक्य – (उसी दृढ़ता से) महामात्य राक्षस ! जिस सम्राट ने अपने परम हितैषी महामन्त्री के परामर्श मात्र पर उसे निर्वासित कर दिया हो क्या वह बावला नहीं ?

राक्षस – मैं व्यक्ति से राज्य को कहीं बड़ा मानता हूँ आचार्यवर ! और राजा को उसका जीवन्त प्रतीक।

चाणक्य – और राजा यदि दुराचारी हो जाए तो ?

राक्षस – तो इसका अर्थ है कि प्रजा में दुराचार फैल गया है।

चाणक्य – तब ?

राक्षस – तब प्रजा की आत्मशुद्धि करनी होगी।

चाणक्य – किस प्रकार ?

राक्षस – पवित्र और संस्कार-दायी आयोजनों के द्वारा।

चाणक्य – और यह आयोजन कौन करेगा ?

राक्षस – प्रजा वर्ग।

चाणक्य – प्रजा वर्ग का प्रेरक और सहायक कौन होगा?

राक्षस – प्रजाजन।

चाणक्य – और बाधा पड़ने पर उनका निवारण किस प्रकार होगा ?

राक्षस – उनका निवारण स्वयं प्रजा अपने आत्मबल से और आवश्यकता पड़ने पर (जोर से) बाहुबल से भी करेगी।

चाणक्य – यदि राज-शक्ति ही बाधा बनकर खड़ी हो जाये तो, आर्यवर ?

(राक्षस पुनः मौन हो जाता है)

राक्षस – (गंभीर स्वर में) बड़े प्रातिभ हो विष्णुगुप्त ! (विषय बदलते हुए) अच्छा और तो समाचार बताओ। अपना व्यक्तिगत जीवन कैसा चल रहा है ?

चाणक्य – टालने की चेष्टा मत करो महामात्य राक्षस ! मैं कुछ निर्णय लेकर आया हूँ।

राक्षस – कौन सा निर्णय आचार्य !

चाणक्य – यदि राजानन्द की बुद्धि शुद्ध नहीं होती तो उसे अपदस्थ करना होगा।

राक्षस – (जोर से) यह राजद्रोह है चाणक्य।

चाणक्य – और वह राष्ट्र-द्रोह है राक्षस महोदय, जिसे नन्द कर रहा है और आप मौन-मन, उसका समर्थन कर रहे हैं।

राक्षस – उसका समर्थन करना हमारा धर्म है।

चाणक्य – धर्म को इतने संकुचित दायरे में मत बाँधो महामात्य ! धर्म दुष्टाचरण-संहारक है, पालक नहीं।

राक्षस – (खीझकर) मेरी भावना नहीं कहती कि मैं नन्द के विरोध में कुछ करूँ।

चाणक्य – भावना से कर्तव्य अधिक महान् है, महामात्य।

राक्षस – (कुछ सोचकर) मैं नन्द के विरोध में कुछ भी नहीं सुनना चाहता चाणक्य जी ! करना तो दूर की बात है।

(चाणक्य गंभीर हो जाता है।)

चाणक्य – (उठकर चलने को उद्यत होता है) अच्छा तो नमस्कार महामात्य जी एक ही साथ संस्कारित हुए थे हम दोनों। ऐसा विश्वास था कि राष्ट्र की संकटापन्न स्थिति में तुम्हारे जैसे उच्चपदस्थ व्यक्ति का सहारा पाकर कुछ अधिक और शीघ्र कर सकूंगा; किन्तु……… ………किन्तु………………तुम भी……………कुअन्न खाकर क्या से क्या बन गये। (उदास होकर) अब चलता हूँ मित्र ! (दृढ़ता से) चलता रहूँगा; तब तक, जब तक (कुछ रुककर) लक्ष्य नहीं प्राप्त कर लेता।

(एक झटके से निकल जाता है।)

राक्षस – (चिल्लाकर) चाणक्य, विष्णुगुप्त, आचार्यवर, ………………।

(चाणक्य वापस नहीं लौटता)

।। पटाक्षेप ।।

× × × × ×

दृश्य–४

(वन पथ। कण्टक-पूर्ण झाड़ियाँ, विशाल वृक्षों, ऊँची-नीची भूमियों को लाँघते हुए आचार्य चाणक्य गंभीर भाव-भंगिमा से युक्त तीव्रता से चले जा रहे हैं। सहसा दाहिनी ओर से एक कंकालमात्र मानव-शरीर कुछ हिल रहा है। वह नर-कंकाल आचार्य के कौतूहल का कारण बनता है। वह उसके समीप जाते हैं। कुछ-कुछ अंधकार हो चला है। आचार्य के पास पहुँचते ही वह नरकंकाल अपनी भयावनी कर्कश आवाज में बोल उठता है।)

कंकाल – (जोर से) कौन…………है ? (अपनी लाल-लाल आँखें और फाड़ देता है।)

चाणक्य – (दृढ़ता और जिज्ञासा से उसके और निकट चले जाते हैं और कुछ पहचानते हुये से) कौन……… ………महापण्डित………का………त्या……य……न।

कात्यायन - (उसी कर्कशता और वितृष्णा से) कुछ नहीं पंडित, पंडित अपना साया मुझसे दूर रखो।

चाणक्य – (और पास जाता है) आचार्यवर !

कात्यायन – कौन आचार्य ? (अपने नाखून तथा दाहिने हाथ की एक हड्डी दिखाकर) दूर हट नहीं तो पहले तेरे ही प्राण ले लूंगा।

चाणक्य – (पूरी तरह पहचानकर और विह्वल होकर लिपट जाता है।) आचार्यवर ! तुम्हारी यह दशा।

कात्यायन – (हड्डी नीचे डालकर तथा कुछ गंभीर होकर) सभी की यही दशा है भोले पुरुष…………सभी की। (एक बार प्रयास पूर्वक खड़ा होता है। फिर धम्म से बैठ जाता है। कुछ हाँफने लग जाता है।)

चाणक्य – महामते ! स्वस्थ होकर कुछ स्पष्ट उत्तर दो।

कात्यायन – (अट्टहास करता हुआ) स्वस्थ होकर (पुनः हँसता है) स्वस्थ होकर उत्तर दूं। तुम कौन हो अबोध युवक ? जो इस ठठरी में भी स्वस्थता की कल्पना करते हो ? (कुछ विक्षिप्तसा होकर शीघ्रता से) पहले अपना परिचय दो।

चाणक्य – (विनम्रता से) विद्वान ! मैं वेदपाठी ब्राह्मण चणक का पुत्र विष्णुगुप्त हूँ।

कात्यायन – (कुछ आश्चर्य मिश्रित आत्मथिता से) महामति च……ण…क(माथे पर हाथ रख लेता है, श्वास तीव्र हो जाती है) अच्छा तो पहले जल दो।

(चाणक्य तुरन्त एक दोने में जल लाकर अपने हाथों से पिलाते हैं। कात्यायन कुछ स्वस्थ होकर चाणक्य की ओर कुछ देर देखता है फिर एक श्वास लेकर।)

कात्यायन – कैसा संयोग है विधाता ! किसी का पिता नहीं और किसी के पुत्र। (शुष्क हँसी हँसता है) वत्स ! विष्णु गुप्त तुमने जल पिलाकर मेरी प्राण रक्षा की, इसका मैं उपकृत हूँ। अब अपने गंतव्य की ओर बढ़ो। जाओ।

चाणक्य – गंतव्य की ओर बढ़ूं आपको छोड़कर। (कुछ खीझकर) ब्राह्मण इतना स्वार्थी हो जायेगा ? कदापि नहीं। अब आप कुछ स्वस्थ हो गये हैं। मैंने प्रारम्भ में एक प्रश्न पूछा है। कृपा कर अब उसे बता दें।

कात्यायन – (कुछ सोचता हुआ सा) प्रारम्भ का प्रश्न……मुझे……कुछ स्मरण नहीं विष्णु………एक बार पुनः………… ।

चाणक्य – (प्रसन्नता से) आचार्य प्रवर ! केवल इतना जानना चाहता हूँ कि महापंडित कात्यायन आज यह कंकाल शेष उत्खनित मूर्ति जैसा कैसे ? बस !

कात्यायन – सुनो वत्स (कुछ रुककर अपनी ही बात काटता हुआ) वत्स ! कौन वत्स कहाँ वत्स ! (दोनों हाथों से सिर थाम लेता है। थोड़ी देर रुककर) चाणक्य…………तुम जाओ। तुम भी तो मनुष्य हो और मनुष्य, मनुष्य के रक्त का प्यासा है, प्यासा है। मेरे अवशेष रक्त को छोड़ दो मनुष्य। शायद मैं इससे अपना प्रतिशोध ले सकूं।

चाणक्य – (चरणों पर गिरकर) अविश्वास न करें देवता ! मैं पिता चणक की शपथ खाकर कहता हूँ,

आपका प्रतिशोध मैं दिलवाऊँगा। मात्र परिस्थिति ज्ञान चाहता हूँ और यह भी जानना चाहता हूँ कि आखिर यह प्रतिशोध किससे और किस लिये ?

कात्यायन – (खीझकर) प्रतिशोध किस लिये (तीव्र स्वर में) सात निरपराध पुत्रों की हत्या और पावभर सत्तू उस अंधकूप में खा-खाकर, पुत्रों की हड्डियों से सुरंग खोद-खोदकर इन (अपनी ओर संकेत करके) हड्डियों को ऊपर ला पाया हूँ और तुम कहते हो प्रतिशोध किस लिए ?

चाणक्य – (बुद्धि पर जोर देकर) अच्छा तो अब समझा। नन्द का प्रचार ! (जोर से) उस कृतघ्नी ने प्रचार करवाया था कि महापंडित कात्यायन हिमालय वास करने चले गये हैं और डलवा दिया था अन्धकूप में ! और उन अबोध निरपराध पुत्रों को भी। (कुछ ध्यान करके) क्या सुवासिनी भी काल के गाल में समा गई।

कात्यायन – (घृणा से) उसका नाम न लो चाणक्य ! वह संभवतः उसी के दरबार में वेश्या वृत्ति कर रही होगी अथवा आत्महत्या कर वह भी स्वर्ग सिधारी होगी।

(चाणक्य माथे पर हाथ रखकर कुछ देर सोचता है।)

चाणक्य – (दृढ़ता से बोलते हुये तथा सहारा देकर कात्यायन को उठाते हुये) ऋषिवर आप मेरे साथ चलें। हमारा और आपका गंतव्य एक ही है और अब मार्ग भी। आश्रम में चलकर सारी योजनाएँ समझा दूंगा।

(सहारा देते हुये चाणक्य कात्यायन को लेकर चल देता है।

।। पटाक्षेप ।।

× × × ×

दृश्य–५

(वही वनपथ, रात्रि का घना अंधकार। झींगुरों की झनकार, कात्यायन तथा आचार्य चाणक्य के पदचापों से रुक-२ जाती है। कात्यायन की शिथिलता के कारण चाणक्य की स्वाभाविक गति बहुत मंद हो जाती है। कहीं-२ तो उन्हें उठाना भी पड़ता है।)

कात्यायन – बड़ा अंधकार है, विष्णुगुप्त !

चाणक्य – इसीलिए तो मार्ग इतना कठिन लगता है ऋषिवर !

कात्यायन – (दार्शनिक मुद्रा में) किन्तु इसका भी अपना महत्व है वत्स !

चाणक्य – (उसी मुद्रा में) है, पर अपनी सीमा तक पूज्यवर।

कात्यायन – सीमाओं के उलंघन ही इतिहास परिवर्तन का कारण बनाते हैं वत्स !

चाणक्य – अवश्यमेव, आचार्यप्रवर !

(दूरस्थ प्रकाश की कुछ झिलमिलाती दीप रश्मियाँ दोनों को दृष्टि गोचर होती हैं।

कात्यायन – कदाचित कोई आश्रम आ गया।

चाणक्य – हमको वहीं विश्राम करना है, विद्वन।

कात्यायन – क्या इसी बीहड़ वन में रहते हो ?

चाणक्य – सन्यास के बाद इसी स्थान को उपयुक्त समझा है।

कात्यायन – ठीक है, तो क्षेत्र सन्यास लिया है अथवा परिब्राजक हो ?

चाणक्य – पूर्ण परिब्राजक हूँ। महात्मन्।

कात्यायन – वैसे अभी तुम्हारी आयु तो शास्त्र सम्मत की दृष्टि से ग्रहस्थाश्रम के योग्य ही है ?

चाणक्य – नन्द के साम्राज्य में प्रत्येक शास्त्र सम्मत कार्य वर्जित हैं, पूज्यवर।

कात्यायन – (रूखी हँसी के साथ) ठीक कहते हो धीमन्। (सामने की ओर संकेत करके) कदाचित कोई नवयुवक आ रहा है।

चाणक्य – (आश्वस्त करते हुये) मेरा शिष्य है आचार्य।

(प्रत्यक्ष आकर चन्द्रगुप्त चाणक्य के चरणों में प्रणाम करता है।

चाणक्य – (कात्यायन की ओर संकेत करके) पहले इनको प्रणाम करो वत्स !

(चन्द्रगुप्त पुनः पहले कात्यायान की ओर फिर चाणक्य को प्रणाम करता है । दोनों अभय मुद्रा में हाथ उठाते हैं, कुटी की सीढ़ियों पर चढ़कर स्वच्छ आसन पर दोनों बैठ जाते हैं । चन्द्रगुप्त कुछ मधुरिम फल प्रस्तुत करता है । दोनों खाते हैं । कात्यायन बार-बार चन्द्रगुप्त की ओर देखता है । चन्द्रगुप्त सामने ही मेरुदण्ड सीधा रखकर बैठा है ।)

कात्यायन – (चाणक्य से) सन्यासिन् ! इस शिष्य के लक्षण तो आश्रमवासी जैसे नहीं लगते ।

चाणक्य – यह तो अस्थाई व्यवस्था है असात्यवर ।

कात्यायन – (चौंककर) क्या कहा आचार्य ? अमात्यवर!
(खीझकर) अपने आवास पर लाकर व्यंग करते हो ?

चाणक्य – (अत्यन्त विनम्र होकर, हाथ जोड़े हुए) कदापि नहीं आदरणीय ! इस समय मैं भूत और भविष्य को जोड़ने में इतना दत्तचित्त था कि वर्तमान का अस्तित्व ही विस्मृत हो गया ।

कात्यायन – (विचार मग्न होकर) भूत.......... बड़ा ही मधुर होता है आचार्य, किन्तु भविष्य............ । इसकी मधुरिम कल्पना – क्या केवल विडम्बना मात्र नहीं ?

चाणक्य – (दृढ़ता से) कदापि नहीं विद्वन । विडम्बना का काल और प्रभाव क्षेत्र समाप्त हो रहा है । विधि का विधान बड़ा प्रबल है । आज हम सब इन्हीं रहस्यों को सुलझायेंगे ।

(चन्द्रगुप्त निर्निमेष नयनों से दोनों मूर्तियों को देख रहा है)

कात्यायन – पर आपने इस तेजस्वी युवक का परिचय नहीं दिया आचार्य श्रेष्ठ ! यह आपका शिष्य है, मात्र इतने से ही मेरी जिज्ञासा शान्त नहीं हो पा रही है वरन् कुछ और बढ़ ही रही है ।

चाणक्य – (कात्यायन के वाक्यों पर ध्यान देते हुये) पूज्यवर ! इस समय ये 'आचार्य श्रेष्ठ' व 'आप' जैसे गुरुतम शब्दों का प्रयोग क्यों करने लगे आप ?

कात्यायन – (गम्भीरता से) चाणक्य जी ! अब मैं आप के आश्रम में आपके शिष्य के समक्ष हूँ । शास्त्र कहता है कि 'शिष्य' के समक्ष उसके गुरु का आदर पूरी तरह से किया जाय और मैं उसी का पालन कर रहा हूँ ।

चाणक्य – किन्तु इन शब्दों से कुछ आत्मयिता कम-सी हो जाती है ।

कात्यायन – आत्मयिता शब्दों में नहीं कृति में चाहिये विद्वन ! और मर्यादा वाणी की शोभा है ।

चाणक्य – जैसा उचित समझें ।

कात्यायन – किन्तु इस युवक का परिचय फिर टल रहा है ।

चाणक्य – परिचय 'टल' नहीं 'पल' रहा है पूज्यवर ! अपने शैशवकाल में परिचय आपके समक्ष प्रस्तुत हो जाय, यह भी आप जैसे महामति के सम्मान के विरुद्ध होगा । अतः परिचय अपने तारुण्य में आपकी सेवा में स्वयं प्रस्तुत हो तभी आनन्द आयेगा ।

कात्यायन – चाणक्य जी ! अब मेरी मेधर ऊसर हो चली है । इस प्रकार की अटपटी शैली समझने में बड़ा कष्ट हो रहा ।

चाणक्य – अच्छा तो संक्षेप में आप यह समझ लें कि इसका नाम चन्द्रगुप्त है । मेरे अध्यापन काल के समय यह मेरा शिष्य रहा है, और सन्यास लेते ही इस राष्ट्र की दयनीय अवस्था की दशा से विचलित होकर भावुकतावश मेरे ही साथ हो लिया है ।

कात्यायन – तो क्या आप अध्यापन भी कर चुके हैं ?

चाणक्य – हाँ ! आचार्यवर !

कात्यायन – कहाँ पर......?

चाणक्य – तक्षशिला विश्वविद्यालय में ।

कात्यायन – कितने वर्ष ?

चाणक्य – केवल दो वर्ष ।

कात्यायन – केवल दो ही वर्ष में क्यों छोड़ दिया ?

चाणक्य – वहाँ के प्रबन्धक आम्भीक के दुराचरण के कारण ।

कात्यायन – यह आम्भीक कौन है ?

चाणक्य – तक्षशिला का राजकुमार । फिर महाराज, तत्पश्चात् अलक्षेन्द्र का दास और अब पृथक पंच-भूतों का पर्याय ।

कात्यायन – यह अलक्षेन्द्र कौन है ?

चाणक्य – यूनान से चला हुआ एक अति महत्वाकाँक्षी पुरुष, जिसने अनेक छोटे-२ देश जीतकर अब भारतवर्ष में डेरा डाल रखा है ।

कात्यायन – यहाँ पर किसका राज्य उसका लक्ष्य बना हुआ है ?

चाणक्य – तक्षशिला पराभूत होकर उसके आधीन हो चुका है । अपनी कूटनीति के द्वारा पंचनद नरेश पुरु को उसने अपना मित्र बना लिया है । और अब मगध राज्य पर धावा बोलने का मनोगत लिये हुये वह झेलम के इस पार अपनी सैन्य छावनी में पड़ा है ।

कात्यायन – (प्रसन्नता से) तब तो यह नन्द से प्रतिशोध लेने का स्वर्ण अवसर है, चाणक्य !

चाणक्य – (खीझकर जोर से) कात्यायन ! (थोड़ा रुककर) क्या प्रतिशोध की ज्वाला में आपका विवेक भस्म हो गया, जो आज एक व्यक्ति से बदला लेने के लिये समग्र राष्ट्र को विदेशी हाथों में सौंप देने का विचार करने लगे । क्या मगध की धरती केवल नन्द की है ? क्या प्राची दिशा के बाल-रवि की रश्मियों में खेलते हुये अबोध नन्हें-मुन्ने उन क्रूर आतताइयों के भालों पर उछाले जाते समय केवल नन्द को ही पीड़ा का अनुभव करायेगें ? क्या लाखों विधवाओं का हृदय द्रावक क्रंदन केवल नन्द को शोकाप्लावित करेगा ? (आर्द्र कण्ठ से) महामते ! अरे ! आप भी ऐसा ओछा विचार मन में ला सकते हैं– यह तो कल्पना भी नहीं थी । (कात्यायन झंकृत हो जाता है । चन्द्रगुप्त के नेत्र करुणा और वीर रस से युक्त हो जाते हैं ।)

कात्यायन – (प्रभावित होकर भावुकता में) वत्स विष्णु गुप्त ! आपत्तियाँ व्यक्ति का विवेक खो देती हैं । मुझे क्षमा करो । अब और कुछ समझने-समझाने की आवश्यकता नहीं हैं । अपना स्पष्ट उद्देश्य व कार्यक्रम बताओ ।

चाणक्य – आचार्यवर ! सुने ! आज से ठीक ३१ वें दिन भरे दरबार में विलासीनन्द का बध होगा । उसका सूत्र-धार आपको बनना होगा । मगध का शासन-सूत्र (संकेत करके) इस चन्द्रगुप्त मौर्य के सबल हाथों में सौंपा जायेगा (चन्द्रगुप्त कुछ चौंकता है) अपने कुछ प्रशिक्षित सैनिक अलक्षेन्द्र की सैनिक छावनी में उसके सैनिकों का मनोबल गिराने के लिये भेजने होंगे और मोड़ देना होगा सदा सर्वदा के लिए उन लिप्सामयी वृत्तियों को जो सारे भारत पर छाने का प्रयास कर रही हैं ।

कात्यायन – तो फिर योजना का कार्यान्वियन कैसे होगा आचार्य प्रवर !

चाणक्य – पाटलिपुत्र से वीर सेन नामक एक युवक कल प्रातः राजधानी के सम्पूर्ण समाचार लेकर प्रस्तुत होगा, तभी भावी योजना कार्यान्वियन प्रारम्भ होगा । (चन्द्रगुप्त की ओर देखकर) तुमको क्या हुआ वत्स । शिथिल से क्यों हुये जा रहे हो ?

चन्द्रगुप्त – (बलात् प्रसन्नता प्रकट करते हुये) कुछ नहीं गुरुदेव, सब ठीक तो है ।

चाणक्य – (मुस्कराते हुये) ठीक तो है ही, परन्तु अंतर्मन किन भावोर्मियों में डूबा हुआ है ?

चन्द्रगुप्त – गुरुदेव......................

चाणक्य – (बीच में ही) अच्छा पहले आचार्य कात्यायन के शयन का प्रबन्ध करो । पुनः तुमसे बात करता हूँ ।

(आचार्य कात्यायन के शयन का प्रबन्ध करने चन्द्रगुप्त जाता है, पीछे कात्यायन भी । चाणक्य कुछ देर वैसे ही बैठा रहता है ।) (पुनः)

चाणक्य – (स्वगत) अब इस नवयुवक के भावुक मन को भी तैयार करने का कठिन कार्य आ गया । मैं भी कैसा भावुक हो गया कि एक ही झटके में सभी कुछ कह डाला । अच्छा कोई बात नहीं । यह भी देखा जायेगा । (उठता है)

।। पटाक्षेप ।।

वेद ही विश्व के सभी प्रमुख धर्मों के स्रोत

सं० नवीन उपाध्याय, १० 'ख'

अपौरुषेय ग्रन्थ वेद ही समग्र विश्व के प्रेरक हैं—इस गंभीर विषय पर किशोर लेखक ने जो गवेषणात्मक श्रम प्रस्तुत किया है, सराहनीय ही कहा जायेगा।

वेद ही विश्व के सभी धर्मों के आदि स्रोत हैं। इस बात को प्रमाणित करने के लिये विभिन्न तथ्य यहाँ प्रस्तुत हैं।

जावा की जनता मुसलमान है और ये मुसलमान रामायण तथा महाभारत पढ़ते हैं, साथ ही ये लोग कुरान को अपनी धर्म-पुस्तक मानते हैं। जावा निवासी रामायण और महाभारत को भी अपनी धर्म–पुस्तक समझते हैं। इस सम्बन्ध में वहाँ एक कथानक प्रचलित है। वे कहते हैं— कि महाभारत के युद्ध की समाप्ति के पश्चात् युधिष्ठिर जावा में एक पहाड़ी पर चढ़कर बैठ गये थे। उनके पास जीवन–वृक्ष की जड़ थी। चढ़ने के पश्चात् वह जड़ पुस्तक बन गयी और युधिष्ठिर उस पुस्तक को खोलकर समाधि में लीन हो गये। उस पुस्तक के प्रभाव से युधिष्ठिर अमर हो गये। सदियों पश्चात् एक शेख उस पहाड़ी पर चढ़ा जिस पर उसने युधिष्ठिर को बैठे देखा। दोनों आपस में बहुत प्रेम के साथ मिले। शेख ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया कि यह क्या पढ़ रहे हो? युधिष्ठिर ने कहा मेरे पास जीवन की पुस्तक है। जिसके प्रभाव से मैं अभी तक जीवित हूँ; मरा नहीं। शेख ने पुस्तक को देखा और देखते ही चौंक कर बोला—अरे, यह तो कुरान है; लाओ, यह पुस्तक मुझे दे दो। युधिष्ठिर ने वह पुस्तक शेख को दे दी और उनकी मृत्यु हो गई। इधर शेख ने जावा में पुस्तक के द्वारा धर्म का प्रचार किया। जावा के इस कथानक में वृक्ष की जड़ के पुस्तक बन जाने, उससे युधिष्ठिर के अमर हो जाने, और जड़ से बनी उस पुस्तक के कुरान होने का रहस्य केवल किस्सा ही नहीं है।

अथर्ववेद—४, ३५, ६ में एक सूक्ति है:—

यस्मिन् वेदा निहिता विश्व रूपा:
तेनौदनेन अतितराणि मृत्युम्।

इसका अर्थ—एक ओदन है, (ओदन अर्थात् भात)–भात बनता है चावल से, चावल अर्थात् एक तरह का पौधा। उससे 'मृत्युम् अतितराणि'—मृत्यु को तर जाता हूँ। ब्रह्म को यहाँ एक पौधा कहा गया है, जिससे वेद निहित है। जैसे शारीरिक उन्नति के लिये वनस्पति की आवश्यकता है; वैसे ही आध्यात्मिक उन्नति के लिये वेद ज्ञान की आवश्यकता है–इसी से मृत्यु को तरा जाता है। वेद का यह आध्यात्मिक भाव जावा में एक कथानक बन गया। नहीं तो युधिष्ठिर के हाथ में वृक्ष की जड़ थी, वह पुस्तक बन गयी, उससे वह अमर हो गया इन सब बातों में कोई तथ्य नहीं मिलता।

पारसियों की धर्म–पुस्तक 'अविस्ता' में परमात्मा कहता है कि मेरा नाम 'अम्हि' तथा 'अम्हि यदम्हि' है। 'अम्हि' शब्द संस्कृत के 'अस्मि' का अपभ्रंश है। पारसी भाषा में 'स' का 'ह' हो जाता है। वर्तमान समय में पारसियों के सम्पर्क में रहने वाले गुजराती लोग 'स' को 'ह' बोलते हैं। वे लोग 'तुम्हारा साथी कहाँ है' को 'तमारो हाथी कहां छे' बोलते हैं। 'अस्मि' का अर्थ—'मैं हूँ'; 'अस्मि यदास्मि' का अर्थ है—'मैं हूँ वह मैं हूँ'।

'अविस्ता' में ही नहीं यहूदियों तथा ईसाइयों के मान्य धर्म–ग्रंथ 'ओल्ड टेस्टामेंट' की 'एक्सोडस' पुस्तक में भी परमात्मा मूसा को कहता है—मेरा नाम 'I am' तथा 'I am that is I am' है। यहूदियों ने परमात्मा के लिये ये दोनों नाम पारसियों से लिये हैं। यजुर्वेद के ४०वें अध्याय में एक स्थल पर 'योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि' आता है। 'सोऽमस्मि' का ही 'अविस्ता' में 'अम्हि' एवं बाइबिल में I am बना है। यजुर्वेद के दूसरे अध्याय के २८ वें मन्त्र में 'इदमहं या एवास्मि सोऽस्मि'—यह आता है। इसका वही अर्थ है, जो पारसियों के 'अम्हि यदम्हि' अथवा यहूदियों एवं ईसाइयों के I am that is I am का है। उपनिषदों में जगह-जगह 'सोऽमस्मि' का उल्लेख है। इन सब वाक्यों का तात्पर्य यह है कि मैं अपने शरीर को 'मैं' माने बैठा हूँ; मैं शरीर नहीं हूँ, 'आत्मा' हूँ। इन वाक्यों में वैदिक विचार धारा की आत्मा निहित थी, इसीलिये इन वाक्यों का वेदों में, उपनिषदों में सर्वाधिक महत्व है; इसी महत्व के कारण यह गीज–मन्त्र पारसियों यहूदियों तथा ईसाइयों में भी पहुँचा, यद्यपि इसके मूलार्थ को वे अब भूल गये।

परमात्मा के उक्त नाम के अलावा यहूदियों में परमात्मा का नाम 'जिहोवा' है, वेद में अग्नि को सम्बोधित करते 'यह्व'–शब्द प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद, १० मंडल, ११० सूक्त तीसरा मन्त्र है—

'आयुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा—
याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
एवं देवानामसि यह्व होता स
एमान्यक्षीषि तो यजीयान्॥'

यहूदी अग्नि के उपासक थे, वैदिक–आर्य भी अग्निहोत्र करते थे। यही कारण है कि अग्नि को सम्बोधन किया जाने वाला 'यह्व' संभवतः यहूदियों में 'जिहोवा' बन गया। इसके अतिरिक्त 'गुहु' धातु से 'जुहोति' आदि शब्द बन गये, जिनसे विकृत रूप 'जिहोवा' बन गया। यहूदी लोग अग्नि के उपासक थे, क्योंकि बायबिल के अनुसार जब मूसा उन्हें मिस्र से निकालकर कैनान ले जा रहे थे, तब 'जिहोवा' ने अग्नि का रूप धारण कर उनका मार्ग प्रशस्त किया।

पारसियों के 'नामाह जरदुश्त' में लिखा है कि भारत से एक बड़ा भारी विद्वान आयेगा जिसका नाम 'व्यास' होगा। वह जरदुश्त के साथ वाद-विवाद करेगा। इसके आगे वे प्रश्न दिये गये हैं, जिन पर विवाद होगा। इससे स्पष्ट है कि पारसी तथा वैदिक धर्म का आपस में संबंध काफी रहा है। यह संबंध इतना गहरा रहा है कि पारसियों में भी इन्द्र, वृत, अर्यमा, वरुण, नासत्यों, भग, नाराशंस, वायु, वृतघ्न आदि सब वैदिक देवता पाये जाते हैं। इनकी देवमाला को देखने से यह ज्ञात होता है कि किसी समय वैदिक धर्म की इन दोनों शाखाओं में—पारसियों तथा दूसरे आर्यों में—इतना मतभेद हो गया था कि जहाँ 'इन्द्र' को वेद में एक बड़ा भारी देवता कहा गया है, वहीं दूसरी तरफ 'अविस्ता' में इन्द्र को बड़ा भारी राक्षस माना गया है। यह मतभेद इतना बढ़ा कि 'देव' शब्द का प्रयोग पारसियों में शैतान के लिये किया जाने लगा। अंग्रेजी का 'डेविल' शब्द भी 'देव' से निकला है, जिसका देव से उलटा अर्थ है। वैदिक शब्दों के ये विरोधी प्रयोग सिद्ध करते हैं कि गंगोत्री से निकली गंगा वहाँ जाकर कीचड़ बन गई है।

ग्रीक लोगों के परमात्मा 'जीयस' कहलाते हैं। शब्द शास्त्र के अनुसार 'जीयस' की व्युत्पत्ति 'डियोस' से हुई है। शब्द–शास्त्रियों ने इसे वैदिक शब्द 'द्युः' से मिलाया है। संस्कृत में 'स्' के स्थान में विसर्ग हो जाता है, इसीलिये 'द्युः' वास्तव में 'द्युस्' शब्द है, जिससे ग्रीक लोगों का 'डियोस' या 'जीयस' शब्द बना है, जो ग्रीक तथा वैदिक दोनों के यहाँ परमात्मा के लिये प्रयुक्त होता है।

रोमन लोगों के यहाँ परमात्मा का नाम 'जुपिटर' था, इसीलिये सिकन्दर को जुपिटर का पुत्र कहा जाता था। जुपिटर का पुत्र वैदिक मूल शब्द 'द्युः पितर है—इसमें द्युः और पितर ये दोनों शब्द मिल गये हैं। द्युः का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, उसी के साथ पितर के

मिल जाने से वैदिक द्युः, पितर से रोमन भाषा का जुपिटर शब्द बना है, जो परमात्मा का नाम है।

वेद की गंगा देश-देशान्तर में कहाँ तक बही—इसे जानने के लिये भाषा-विज्ञान तथा शब्द-शास्त्र बहुत सहायक हैं। जब वेदों की गंगा विश्व भर में आप्लावित होने लगी, तो उसके साथ बहुत-कुछ बहता चला गया। आर्य-देश के स्मृतिकार 'मनुः' थे। यहूदियों के स्मृतिकार का नाम 'मोजेज' या 'मूसा' है। 'मनुः' के विसर्गों को 'स' कर दिया जाय तो 'मनुस' (मोजेज) हो जाता है, जो 'मनु' का अपभ्रंश है ईजिप्ट का स्मृतिकार 'मेनस' था, ग्रीक लोगों का स्मृतिकार 'माइनोज' था। ये सब आर्य-देश के स्मृतिकार सम्भवतः मनुः के ही रूप हैं।

विद्वान लोग संसार की भाषाओं को 'आर्य' तथा 'सेमेटिक'—इन दो भागों में बाँटते हैं। इसी प्रकार धर्म भी 'आर्य' तथा सेमेटिक - इन दो भागों में बाँटे गये हैं। आर्य-धर्म में भारतीय, पारसी, रोमन, यूनानी आदि धर्म आ जाते हैं; सेमेटिक में यहूदी, ईसाई, इस्लाम धर्म आ आते हैं। अक्सर यह समझा जाता है कि आर्य और सेमेटिक का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु गहराई में जाने से यह बात प्रतीत नहीं होती। आर्य तथा सेमेटिक धर्मों वैदिक, पारसी, यहूदी, ईसाई, मुस्लिम, धर्मों में कई ऐसी समानताएँ पायी जाती हैं, जो धर्म के विद्यार्थी को आश्चर्य में डाल देती हैं। ये समानतायें तभी समझ में आ सकतीं हैं, जब यह समझा जाय कि वेद ही इनके मूल-स्त्रोत हैं।

सेमेटिक-धर्मों में सृष्टि की उत्पति के साथ-साथ खुदा और शैतान दोनों का जिक्र पाया जाता है, शैतान का जिक्र यहूदी, ईसाई तथा मुहम्मदी—तीनों धर्मों में विद्यमान है। 'ओल्ड टेस्टामेंट' में लिखा है कि खुदा ने अदन के बगीचे में Tree of Knowledge को रोक कर आदम से कह दिया कि इसके फल को मत खाना। शैतान, जिसकी शक्ल सर्प के समान थी, आकर आदम को बहकाकर उसे फल खाने दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि खुदा में और शैतान में तू-तू, मैं-मैं हो गयी और खुदा ने शैतान को (सर्प को) शाप दिया कि तू जमीन पर जा गिरेगा और पेट के बल रेंगा करेगा। यह कहानी ज्यों-की-त्यों ईसाइयों में तथा इस्लाम ने स्वीकार करके, इसे अपने-अपने धर्मों में सम्मिलित कर लिया। मूल रूप में यह लड़ाई Tree of Knowledge के लिये हुई। खुदा यह चाहता था, कि यह वृक्ष उसी के पास रहे, शैतान ने उसे आदमी तक पहुँचा दिया, इसी से साँप को जमीन पर पटक दिया। वेदों में इन्द्र और वृत्र की लड़ाई का वर्णन मिलता है। इन्द्र सदैव असुरों से लड़ता रहता है, असुरों का मुखिया वृत्र है। वेद में वृत्र के लिये 'अहि'-शब्द भी आया है। ऋग्वेद, मण्डल १, सूक्त ३२, मन्त्र ३ में 'इन्द्र' और 'अहि' की लड़ाई का जिक्र पाया जाता है वहाँ लिखा है—

'वृषायमाणो अवृणीत सोमं
त्रिकद्रु केष्वपिवत्सुतस्य
आ सायकं मघवा अदत्तवज्रं
अहन्नेनं प्रथमजाम् अहीनाम।'

अर्थात् 'इन्द्र' ने सोम का पान किया और फिर उसने वज्र लेकर 'प्रथम अहि' को मार डाला। 'अहि' जब मरा तब उसका वेद में इस प्रकार वर्णन किया है—

'अपादहस्तः अपृतन्यदिन्द्रम्।'
(ऋग्वेद १, ३२, ७)

"हाथ पैर तो हैं नहीं और इन्द्र पर आक्रमण करने चला! इसका नतीजा यह हुआ कि—

'अहिःशयत उपपृक पृथिव्याः।'

अर्थात् 'अहि' पृथिवी पर आ सोया, आ गिरा।

सेमेटिक धर्मों में खुदा और साँप का Tree of Knowledge के लिये झगड़ा होता है और साँप पृथिवी पर आ रेंगने लगता है; वैदिक-धर्म में इन्द्र और 'अहि' का 'सोमरस' के लिये झगड़ा होता और अहि पृथ्वी पर आ सोता है। वेदों में जो जरा भी जानकारी रखता है, उसे मालूम है, कि वेद में 'सोम' प्रयोग 'जल' तथा 'ज्ञान'—इन दो अर्थों में हुआ है। बायबिल में

सोम के 'ज्ञान'—इस अर्थ को लिया गया है, अन्यथा बायबिल का Tree of Knowledge वेद का 'सोमरस' ही है। इसके अलावा वैदिक भाषा से परिचय वाले यह जानते हैं कि 'अहि' का अर्थ 'साँप' और 'बादल'—ये दो शब्द हैं। बोल-चाल की संस्कृत में 'अहि' का अर्थ साँप ही है। 'अहि' की सोमरस के लिये इन्द्र से लड़ाई हुई, इसका सेमेटिक धर्मों ने यह अनुवाद किया है कि अहि, अर्थात Tree of Knowledge के लिये, इन्द्र से अर्थात खुदा से लड़ाई हुई। वेद में लिखा है कि अहि के हाथ–पैर नहीं थे, साँप के भी हाथ–पैर नहीं होते। वेद में लिखा है कि—अहि जमीन पर आ गिरा, बाइबिल में लिखा है—तुम अपने पेट के बल जमीन पर रेंगोगे। इससे स्पष्ट है कि बाइबिल की खुदा और साँप की कहानी वेद के इन्द्र तथा अहि के संदर्भ को न समझ कर गढ़ ली गयी है। 'अविस्ता' में भी शैतान का स्वरूप 'अहि' का ही है। उनकी भाषा में 'अहि' को 'अज्हि'—कहा है। शायद आप इस बात पर आश्चर्य करें, कि वेद में शैतान की कहानी कहाँ से आ गयी। वस्तुतः ऋग्वेद के इस सूक्त को पढ़ा जाय, तो स्पष्ट हो जाता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में जो वाष्प उठते हैं, हर समय बादल मण्डराते रहते हैं; धुंध छाया रहता है, सूर्य के दर्शन तक नही होते, यह उस समय का वर्णन है। तभी आगे चल कर कहा है—

'अवासृजः सर्तवे सप्तसिन्धून्'
(ऋग्वेद १, ३२, १२)

अहि अर्थात बादल, जब पृथिवी पर आ गिरा, तब नदियाँ बहने लगी, अहि अर्थात् बादल जल को अपने पास रखना चाहता है, बरसाना नहीं चाहता, परन्तु इन्द्र अर्थात् सूर्य उसके टुकड़े–टुकड़े करके उसे पृथ्वी पर ला पटकता है। बादल अपाद हस्त होता है—उसके हाथ–पैर नहीं होते। जब वह नीचे आ बसता है, तब उससे नदियाँ बहने लगती हैं। वेद के इस वर्णन से सेमेटिक धर्मों में साँप की—शैतान की–कहानी ने जन्म लिया, और इसका कारण 'अहि' शब्द के अर्थ को न समझना है। 'अहि' का अर्थ साँप भी है, बादल भी है। साँप के हाथ–पैर नहीं होते, बादल के भी नहीं होते। इस भ्रम से वेदों का आदि–सृष्टि का एक सुन्दर वर्णन सेमेटिक धर्मों में जाकर कुछ का कुछ बन गया है, परन्तु इससे यह बात जरूर सिद्ध होती है कि वेद ज्ञान रूपी शुद्ध जल धारा गंगोत्री से चली है, जो आगे चल कर कूड़ा–कर्कट लेकर गंदा पानी बन गयी है।

"जिस शिक्षा में मनुष्य' बनाने की शक्ति नहीं है, वह शिक्षा नितान्त अभावात्मक है। अभावात्मक शिक्षा मृत्यु से भी बुरी है।"

—स्वामी विवेकानन्द

योद्धा सन्यासी

अजय गोयल, दशम 'क'

[विवेकानन्द जैसे अद्‌भुत व्यक्तित्व पर एक पाठनीय लेख ।]

हमारी भारतीय सभ्यता अत्यन्त प्राचीन है । इसको नष्ट करने के लिये समय-समय पर विदेशी आक्रमण होते रहे हैं; परन्तु आज भी वह अक्षुण्ण बनी हुयी है । इसका श्रेय हम उन महापुरुषों को देते हैं जिन्होंने अपनी अक्लान्त चेष्टा, आत्मोसर्ग एवं बौद्धक ज्ञान से सदैव इसकी संस्कृति की रक्षा की है, जिन्होंने अपने तन, मन, धन को राष्ट्र देवता के चरणों में अर्पित कर दिया है। इस प्रकार के गुण सम्पन्न तेजस्वी और राष्ट्र भक्त महापुरुषों में स्वामी विवेकानन्द का नाम अग्रगण्य है ।

भारत में विदेशी साम्राज्य का स्थायित्व,सर्वत्र अशान्ति मय वातावरण, लोक व्यवस्थाओं का छिन्न-भिन्न होना, जाँति-पाँति और अधर्म का सर्वत्र बोल बाला, अत्याचार पूर्ण दुर्नीतियाँ, प्रजा-शक्ति का दमन, अराजकता और अन्याय का पूर्ण प्रभाव । समाज की इस दयनीय अवस्था में जब पराजित हिन्दू जाति अधः पतन की चरमावस्था पर थी और धर्म पर से लोगों का विश्वास उठ गया था ऐसे संकट काल में विवेकानन्द का आविर्भाव मानो समाज और राष्ट्र के पुनरोत्थान के लिये ही हुआ हो । गुरू रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क में आकर सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र कार्य के लिये अर्पित करने वाले स्वामी विवेकानन्द का आविर्भाव और तिरोभाव दोनों ही अतीत की घटनायें हो चुकी हैं; किन्तु उनका आदर्श हमारे लिए नित्य नूतन है, शाश्वत है ।

१२ जनवरी, १८६३ ई० का वह शुभ दिन जब कलकत्ता नगरी का दत्त भवन एक शिशु के करुण क्रन्दन को सुनकर प्रफुल्लित हो उठा । बालक का तेजस्वी मुख मण्डल विशिष्ट आभा युक्त था । विशाल नेत्र, उन्नत ललाट, तेजस्वी व्यक्तित्व ये सभी बालक की सुन्दरता को और अधिक निखार रहे थे । उस समय बंग प्रदेश में पौष का उत्सव मनाया जा रहा था, ऐसा प्रतीत होता था कि उस महापुरुष के स्वागत के लिये ही सम्पूर्ण नगर में आनन्दोल्लास का वातावरण व्याप्त है । भगवान विश्वेश्वर की दया से प्राप्त इस बालक का नाम प्रारम्भ में वीरेश्वर ही रखा गया, परन्तु नाम करण संस्कार के पश्चात् बालक को नरेन्द्रदत्त नाम से ही पुकारा जाने लगा ।

पिता विश्वनाथ दत्त एक सरकारी वकील होने के कारण बालक के विकास में ध्यान नहीं दे पाते थे, किन्तु माता भुवनेश्वरी नित्य प्रति बालक को रामायण एवं महाभारत की कहानियाँ सुनातीं । बालक ध्यान पूर्वक इन कथाओं को सुनता । इन्ही कथाओं ने बालक को बचपन से ही निर्भीक, साहसी और दृढ़व्रती बना दिया था ।

इन कथाओं से प्रभावित होकर बालक नरेन्द्र श्रीराम और सीता की युगल मूर्ति लाकर नित्यप्रति उसकी पूजा करना प्रारम्भ कर देता है, परन्तु एक दिन विवाहित जीवन का जीता जागता विवरण अपने कोचवान से सुन-कर विवाह के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो जाती है । भारतीय हिन्दू समाज के लिये राम भले ही भगवान हों; परन्तु नरेन्द्र के लिये वे उस समय पूज्यनीय न थे । वह

उस मूर्ति को तोड़कर उसके स्थान पर भगवान शंकर की मूर्ति की स्थापना कर देता है। यद्यपि यह कार्य हम सब के लिये अनुकरणीय नहीं तथापि बालक नरेन्द्र की विवाह के प्रति विरक्ति का द्योतक है ही।

'Coming events cast their shadows before' वाली कहावत विवेकानन्द जी पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है।

बाल्यावस्था से ही ध्यान साधना उनके जीवन का एक अनिवार्य खेल सा हो गया था। एक दिन जब वे इसी प्रकार अपने साथियों के साथ खेल खेल रहे थे, सभी ध्यान मग्न थे तभी एक सर्प आकर अपने फन से नरेन्द्र के सिर पर छाया कर देता है। अन्य सभी बालक सर्प-सर्प कहकर भाग खड़े हुये, परन्तु वह बालक नरेन्द्र निश्चल समाधि में लीन था। उस शोरगुल का बालक के स्पन्दन हीन शरीर पर कोई प्रभाव न पड़ा। कुछ समय पश्चात् सर्प स्वयमेव चला गया। बाद में पूछने पर नरेन्द्र ने उत्तर दिया कि मुझको तो पता भी नहीं कि सर्प आया था। कैसी ध्यान धारणा शक्ति!

नरेन्द्र के घर में विभिन्न जातियों के व्यक्ति आते रहते थे। इसके लिये अलग अलग हुक्कों का प्रबन्ध था। एक दिन नरेन्द्र सभी हुक्कों को मुंह में लगाते हैं तभी अचानक पूज्य पिता का आगमन होता है। बालक के इस कृत्य को देखकर पिता आश्चर्य चकित हो जाते हैं। उनके पूछने पर बालक नरेन्द्र बड़े ही भोलेपन से उत्तर देता है कि इसके पीने मात्र से जाति जाती है या नहीं?

नरेन्द्रनाथ बचपन से ही संवेदन शील और सहृदय थे। दूसरों के दुःख को देखकर वह अत्यन्त दुःखी हो जाया करते थे। साधू, सन्यासियों, अपाहिजों और याचकों को नरेन्द्र निःसकोच दान दिया करता था तथा कुछ न होने पर अपने ही वस्त्र उतार कर दे देते थे। इस प्रकार की दानशीलता की प्रवृत्ति का उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ ही है।

पाँच वर्ष की अवस्था में विद्यालय प्रवेश। नरेन्द्र बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के थे। किसी कठिन विषय को सरलता से हृदयंगम कर लेना उनकी विशेषता थी। अपनी तर्क शक्ति, वार्क चातुर्यता, पाणित्य तथा अद्भुत प्रतिभा के कारण नरेन्द्र ने बचपन से ही सभी को प्रभावित कर दिया था। उनके दर्शन शास्त्र के अध्यापक हेस्टी साहब ने उनकी प्रसंशा करते हुये कहा था, "He is an excellent philosophical student. In all the German and English universities there is not one student so brillient as he."

ईश्वर सम्बन्धी पाश्चात्य आलोचनाओं और विवादों ने उनके मन में एक विराट द्वन्द उपस्थित कर दिया। बचपन का संस्कार और ईश्वर में विश्वास धीरे-धीरे डिगने लगा। वह सत्य की खोज में दर्शन, साहित्य, आदि के अतिरिक्त वाह्यजगत के सम्बन्ध में भी अध्ययन करते। जब कभी कोई साधू या सन्यासी ईश्वर के विषय में प्रवचन और उपदेश देता तो नरेन्द्र का पहला प्रश्न होता "क्या आपने ईश्वर को देखा है?" नरेन्द्र के इस प्रश्न को सुनकर बड़े-बड़े योगी तपस्वी और सन्यासी निरुत्तर हो जाया करते। वे अपने उपदेशों आदि के माध्यम से उसकी जिज्ञासा को शान्त करने का प्रयत्न करते परन्तु नरेन्द्र इससे सन्तुष्ट न होता। चारों ओर से असफल होने के पश्चात भी नरेन्द्र की सत्य को जानने की जिज्ञासा शान्त न हुयी, अपितु उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। नरेन्द्र ने तो सत्य की खोज का व्रत ले रखा था, निराश होकर बैठ जाना उनके सिद्धान्त के प्रतिकूल था। संयोग से एक दिन उनका सम्पर्क एक ईश्वर भक्त, महाज्ञानी, तपस्वी और समाज सेवी सन्यासी स्वामी रामकृष्ण परमहंस से हुआ। नरेन्द्र ने अन्य साधारण साधु सन्यासियों की भाँति उनसे भी यही प्रश्न किया कि क्या आपने ईश्वर को देखा है? रामकृष्ण परमहंस ने मुस्कराहट के साथ कहा—"बेटा! मैंने ईश्वर के दर्शन किये हैं।" नरेन्द्र आश्चर्य चकित होकर प्रश्न करते हैं, "क्या आप मुझे उसको दिखा सकते है?" स्वामी जी ने उत्तर दिया, "हाँ"।

इसके पहले नरेन्द्र ब्रह्म समाज के सदस्य बन चुके

थे। उन्हें मूर्ति पूजा और साकार ईश्वर पर विश्वास नहीं था; परन्तु जब उन्होंने स्वामी राम कृष्म परमहंस से ईश्वर के अस्तित्व के विषय में सुना तो वे क्षण भर के लिये किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये। अचानक ही स्वामी जी को गुरु न मान सके परन्तु उनके प्रति अगाध भक्ति और श्रद्धा तो उत्पन्न हो ही गयी। बाद में घनिष्ट सम्पर्क के पश्चात जब नरेन्द्र ने उनकी आध्यात्मिक शक्तियों को पहचाना तो वे उन्हें गुरु मानने से इन्कार न कर सके। अब नरेन्द्र प्राय: दक्षिणेश्वर जाने लगे। इसी बीच नरेन्द्र पर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है क्योंकि उनके पिता असमय ही स्वर्ग सिधार गये। नरेन्द्र के कुछ मित्र उन्हें आर्थिक सहायता देना चाहते थे, किन्तु आत्म निर्भर और स्वाभिमानी नरेन्द्र ने इससे इन्कार कर दिया।

एक दिन परिवार की अत्यन्त दयनीय अवस्था को देखकर वे अपने गुरू श्री रामकृष्ण परमहंस के पास गये और अपनी समस्या बतायी। स्वामी जी ने कहा, "माँ काली से माँगो वे अवश्यमेव तुम्हारी इच्छा पूर्ति करेंगी।" नरेन्द्र माता के सम्मुख जाते हैं, परन्तु उनके मुख से अनायास ही निकल पड़ा—"माँ मुझे ज्ञान दो। भक्ति दो। विवेक दो। वैराग्य दो।" इस घटना से राम कृष्ण परमहंस को स्पष्ट रूप से विदित हो गया कि नरेन्द्र का जन्म मानव कल्याण तथा राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिये ही हुआ है। उन्होंने एक कुशल शिक्षक की भाँति नरेन्द्र की आध्यात्मिक शक्तियों का विकास किया। स्वामी जी नरेन्द्र को नरेन्द्र से विवेकानन्द बना रहे थे ताकि वे नरेन्द्र के द्वारा अध: पतित हिन्दू जाति के अज्ञानान्धकार को दूर कर सकें। हिन्दू समाज को जागृत किया जा सके। भारत का यश पुन: चतुर्दिक फैले।

नरेन्द्र तो अपने को पूर्णरूपेण स्वामी जी के चरणों में अर्पितकर चुके थे। आधुनिक समय में इस प्रकार की गुरू-शिष्य परम्परा का अन्य उदाहरण मिलना असम्भव ही है। नरेन्द्र के मन में अपने गुरू के प्रति कितनी श्रद्धा और विश्वास था इसका वर्णन करना अत्यन्त दुरूह है। इसी कारण रामकृष्ण परमहंस ने अपनी सभी शक्तियाँ विवेकानन्द को दे दी।

१५ अगस्त, सन् १८८६ को स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने समाधिस्थ होकर प्राण त्याग दिये। स्वामी विवेकानन्द अपने गुरू की इच्छानुसार भारत भ्रमण पर निकल पड़े। चारों ओर घूमते हुये, उपदेश देते हुये मानव मात्र की समस्याओं का समाधान करते हुये स्वामी विवेकानन्द भारत का भ्रमण कर रहे थे। ब्रह्म समाज के उपदेशों को सुनकर जो मनुष्य मूर्ति—पूजा के विरोधी हो गये थे, उनका उचित दिशा निर्देशन किया। पाश्चात्य सभ्यता को ही सब कुछ मानने वाले, परमुखापेक्षी स्वदेशी मूर्खों को भारतीय सभ्यता और संस्कृति से परचित कराते हुये स्वामी जी ने वास्तविक भारत का स्वरूप देखा। उसके इस स्वरूप को देख कर स्वामी जी व्याकुल हो उठे। भारत माता की इस दीन हीन स्थिति को देख कर उनका मन मचल उठा।

इसी प्रवास के मध्य स्वामी जी को समाचार मिलता है कि शिकागो में विश्व—धर्म सम्मेलन होने जा रहा है। स्वामी जी के शिष्यों ने उनसे शिकागो जाने के लिये कहा एवं कुछ धन की व्यवस्था भी की। स्वामी जी ने प्रत्युत्तर में यही कहा कि यदि ईश्वर चाहेगा तो उसके लिये व्यवस्था भी करेगा। इस समय स्वामी जी का भारत भ्रमण कार्य—क्रम अव्याहत गति से चल रहा था। शिष्यों के अत्यधिक निवेदन करने पर स्वामी जी ने शिकागो जाने के लिये अपनी अनुमति दे दी। स्वामी जी कोई कार्य जनता की इच्छा के विरुद्ध नहीं करना चाहते थे, अतएव उन्होंने धन-संग्रह के लिये जनता को ही माध्यम बनाया। इसी समय स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने स्वप्न में दर्शन दिया और शिकागो जाने का आदेश दिया। इसके बाद माँ शारदा से भी आज्ञा प्राप्त कर कार्य—क्रम निश्चित किया।

धीरे—धीरे यात्रा का दिन निकट आया। स्वामी जी ने अपनी यात्रा जहाज के द्वारा प्रारम्भ की। अपनी मातृ भूमि छोड़ते समय स्वामी जी बालक के समान

व्याकुल हो उठे। उनकी यह इच्छा न थी कि वह अपनी जन्म भूमि छोड़कर और कहीं जायें; परन्तु मानव-कल्याण का उद्देश्य और हिन्दू धर्म की महानता का घोष करना, उन्हें विदेश जाने के लिये विवश कर रहे थे। इन प्रकार भारत के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक ज्ञान से विश्व को परिचित कराने के लिये स्वामी विवेकानन्द ३१ मई, १८९३ ई० को अपनी शिकागो यात्रा पर निकल पड़े।

बम्बई से यात्रा प्रारम्भ करके लंका, जापान, चीन आदि होते हुये स्वामी जी शिकागो पहुँचे। इस नये देश में धन के व्यय के विषय में स्वामी जी पूर्वतः अनभिज्ञ थे, अतः उनका अधिकांश धन व्यर्थ में ही व्यय हो गया। यहाँ जब स्वामी जी को ज्ञात हुआ कि विश्व धर्म सम्मेलन सितम्बर से पहले न होगा तथा बिना परिचय पत्र के कोई भी प्रत्याशी उसमें भाग नहीं ले सकेगा तो उनके पैरों तले धरती खिसक गयी। समय अधिक जान कर उन्होंने शिकागो से बोस्टन की ओर प्रस्थान किया। संयोग से मार्ग में उनका परिचय मिस कैथरीनसन से हुआ, जिनके यहाँ स्वामी जी कुछ समय अतिथि के रूप में रहे। यहाँ उनका परिचय प्रोफेसर जान हेनरी से हुआ। उनसे परिचय पत्र प्राप्त कर स्वामी जी ने पुनः शिकागो की ओर प्रस्थान किया, परन्तु वहाँ पहुँच कर जब उनका परिचय पत्र खो गया तो उन्हें बड़ी निराशा हुयी। उस समय भारत के एक हिन्दू प्रतिनिधि को रात्रि में रहने के लिये कोई स्थान न प्राप्त हो सका। उन्होंने स्टेशन पर पड़े लकड़ी के डिब्बों में ही अपनी शीत-पूर्ण रात्रि व्यतीत की। कैसी विडम्बना थी ? एक राष्ट्र भक्त के लिये यही फूलों की सेज थी।

अगले दिन प्रातःकाल जब यह योद्धा सन्यासी शिकागो के राज मार्गों पर घूम रहा था तो सभी अमेरिका निवासी उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देख रहे थे। क्षुधा से व्याकुल उस सन्यासी को उस समय अपनी क्षुधा शान्ति करने के लिये भीख भी न मिल सकी। कैसा दुर्भाग्य था ! अचानक तभी संयोग से एक संवेदन शील महिला जार्ज डबल्यू हैल उन्हें अतिथि बनाकर घर ले जाती है और परिचय आदि के पश्चात् उसके माध्यम से स्वामी जी विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेते हैं।

सम्मेलन ११ सितम्बर, १८९३ ई० को प्रारम्भ हुआ। सभा मण्डल सात हजार दर्शकों से भरा पड़ा था। प्रत्येक धर्म के विद्वान अपना अपना भाषण तैयार करके लाये थे; परन्तु भारत माता के इस सपूत के पास पहले से तैयार किया हुआ कोई भाषण न था। जब स्वामी जी का अवसर आया तो सरस्वती जी को प्रणाम कर तथा स्वामी राम कृष्ण परमहंस का स्मरण कर सभा मंच पर पहुँचे। उन्होंने आते ही सर्व प्रथम वहाँ के नागरिकों को सम्बोधित करते हुए कहा, "मेरे प्रिय अमेरिकावासी, भगिनी एवं भ्रातृगण।" उनके इस वाक्य से विशाल जन-समूह आनन्द से प्रफुल्लित हो गया। लगभग दो मिनट की करतल ध्वनि के पश्चात उन्होंने अपना भाषण देना प्रारम्भ किया। उन्होंने हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता, उसके दर्शन एवं उसकी प्राचीनता पर प्रकाश डाला। उनके भाषण को आश्चर्य चकित जनता एकाग्र चित्त होकर सुनती रही। शीघ्र ही स्वामी विवेकानन्द शिकागो निवासियों के प्रिय हो गये। उनकी वाणी का प्रभाव पूर्ण-रूपेण प्रकट हो चुका था। सर्व-धर्म सम्मेलन के प्रथम दिन के बाद ही सम्पूर्ण अमेरिका उन्हें जान गया था।

स्वामी जी की इस ख्याति का समाचार भारत भी पहुँचा। सम्पूर्ण देश के निवासियों में उनके इस कृत्य से आशा की किरण का उदय हुआ।

अमेरिका से स्वामी जी इगलैण्ड गये। वहाँ भी हिन्दू धर्म की प्रधानता, भारत दर्शन आदि का एक अभूतपूर्व प्रभाव वहाँ के निवासियों पर डाला। स्वामी जी के व्याख्यानों से प्रभावित होकर अनेकों विदेशियों ने उनके शिष्यत्व को स्वीकार किया। कुछ शिष्य भारत में भी आये उनमें भगिनी निवेदिता (मिस मारग्रेट) प्रमुख हैं।

चार वर्षों तक लगातार विदेश-प्रवास पर रहने से, अपनी प्रभावी चेष्टाओं से हिन्दू-धर्म का प्रचार करते रहने के बाद अपने कर्तव्य को पूर्ण समझकर स्वामी जी

ने विदेश से भारत लौटने का निश्चय किया और एक दिन अपने सभी विदेशी भाई–बहिनों से विदा लेकर भारत की ओर चल पड़े। भारत की भूमि पर आते ही विवेकानन्द जी एक बालक के समान भारत माता की गोद में लोटने लगे। यहाँ आकर स्वामी जी पुन: हिन्दू धर्म के प्रचार में लग गये।

२ जुलाई, सन् १९०२ का वह दुर्भाग्य पूर्ण दिन था जब स्वामी विवेकानन्द इस नश्वर शरीर को त्याग कर, ब्रह्म में लीन हो गये। इस प्रकार भारतीय इतिहास का देदीप्यमान सूर्य सायंकाल के अंधकार में विलीन हो गया। सम्पूर्ण समाज शोकाकुल हो गया। आज एक ऐसा प्रखर व्यक्तित्व जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र कार्य के लिये अर्पित कर दिया था, जिसने आत्म विस्तृत हिन्दू जाति को एक नवीन दिशा प्रदान की, जिसने हिन्दू दर्शन से विश्व को परिचित कराया और जिसने अपने गुरू स्वामी राम कृष्ण परमहंस के आदेश पर अपना सर्वस्व राष्ट्र देवता भारत के चरणों पर अर्पित कर दिया, ऐसा उद्भासित सूर्य आज रात्रि के अंधकार में विलुप्त हो गया था।

"हम पढ़ा रहे हैं" यह विचार कर अध्यापक सब कुछ बिगाड़ देता है, क्योंकि मनुष्य के अन्तर में सम्पूर्ण ज्ञान निहित है। केवल उसको जागृत करने की आवश्यकता है। यही अध्यापक का कार्य है।

—स्वामी विवेकानन्द

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस

पदम कुमार, नवम 'ख'

[शहीद–दिवस पर आयोजित भाषण–माला प्रतियोगिता पर तृतीय स्थान प्राप्त रचना।]

हमारी भारत माता गुलामी की जंजीरों से जकड़ी हुई थी। इस समय हमारे देश को किसी क्रान्तिकारी की आवश्यकता थी। १८५७ के चालीस–बयालिस साल बाद, उस समय भारत 'महान समर' की कहानी भूल चुका था। इसी समय २३ जनवरी सन् १८९७ ई०, स्वच्छाकाश पर सफेद बादल के टुकड़े तैर रहे थे। राय बहादुर जानकी नाथ बोस दरवाजे पर टहल रहे थे। कुछ ही समय पश्चात् उनको एक शिशु–क्रंदन की ध्वनि सुनाई दी। टहनियाँ मस्ती में झूम उठीं। उसी समय राय बहादुर जानकी नाथ बोस के कानों में एक मधुर गान प्रविष्ट हुआ।

"मसलहत का तकाजा है, वक्त की आवाज है
राहे आजादी में मरने का, यही अन्दाज है।
ए अज़ीज़ाने वतन, तू अस्ल में ज़ाने वतन
शान है तेरी वतन से, और तू ज़ाने वतन।"

ये गीत-पंक्तियाँ उस शिशु के रुदन के साथ मानो एकाकार हो गयीं और वह नवजात आगे चल कर सुभाष चन्द्र बोस के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी बुद्धि बचपन से ही बहुत तेज थी। एक बार इनके अध्यापक ने पूछा, यह पेड़ कितना ऊँचा है? सुभाष ने दृढ़ता पूर्वक उत्तर दिया कि यह पेड़ मध्य से दूना है।

समय बीतता गया और साथ ही सुभाष बाबू की दृढ़ता और देश–भक्ति भी पल्लवित होती गयी। भारत माता को स्वतन्त्र कराने के लिए कालान्तर में इन्होंने 'आजाद हिन्द फौज' का गठन किया। इन्होंने लोगों से कहा 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा।' यही इनका ध्येय वाक्य था।

सुभाष बाबू कितने कोमल हृदय के थे यह जानने के लिए उनके जीवन की एक पुरानी घटना लिख देना पर्याप्त है। एक बार बंगाल में बाढ़ आ गयी। सुभाष चन्द्र बोस ने एक मकान डूबता हुआ देखा उस पर आठ साल की बालिका रुदन मचा रही है। सुभाष ने नाव वाले से कहा, 'तुम नाव उस मकान के पास ले चलो।' नाव चलाने वाला नाव को उस मकान के पास ले गया। सुभाष ने उस बालिका को अपनी गोद में लिया। बालिका ने रोते हुए कहा (इशारा करते हुए) कि मेरा भाई यहाँ डूबा हुआ है। सुभाष निकालने को तैयार हो गये। उनके साथियों ने बहुत समझाया। परन्तु सुभाष नहीं माने और डुबकी लगाई। एक बार वह बिना बालक को पाये ही वापस ऊपर उछल आये। बालिका और जोरों से क्रन्दन करने लगी। सुभाष के मन में करुणा समा गयी। सुभाष ने दुबारा फिर डुबकी लगाई। जब वह थोड़ी देर बाद निकले तो वह सफल हो गये। उन्होंने चिकित्सा कर यह पता लगाया कि बालक अभी जिन्दा है। आठ–नौ दिन बाद जब बालक ठीक हुआ तो सुभाष ने दोनों के नाम पूछे। लड़के का नाम बसंत कुमार तथा लड़की का नाम नीरा था। दोनों ने कहा, "हे देवता ! जब–२ आप पर आपत्ति आयेगी तब–२ हम आपका साथ देने को तैयार हैं।" वे दोनों हाथ

पकड़े चल दिये । सुभाष उन दोनों को बड़ी गहरी नजर से देख रहे थे या फिर उनमें कुछ ढूंढ़ रहे थे ।

सुभाष को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उन पर अनेक कष्ट भी आये । एक बार वह माँडले की जेल में थे, न जाने क्यों उस दिन उनको कुछ चिंता होने लगी; किन्तु वह भारत का शेर, स्वतन्त्रता का उद्दाम पुजारी, क्षण मात्र में ही विचार बदल कर सोचने लगा कुछ इस प्रकार—

"सारी खुदाई छोड़कर, सारा जमाना छोड़कर,
चैन गर लेगा तो, जंजीरे गुलामी तोड़ कर ।"

ये गीत–पंक्तियाँ उसके मन में बैठ गयी, जिसके कारण वह अपने देश को आजाद कराने में समर्थ सिद्ध हो सका । २३ अगस्त, १९४७ को टोकियो का यह समाचार पूरे संसार भर में गूंज उठा कि,

'आजाद हिन्द फौज की अस्थाई सरकार के सर्वोच्च अधिकारी श्री सुभाष चन्द्र बोस हबीबुर्रहमान के साथ टोकियो आ रहे थे । फारमोसा के निकट ताइहोकू नामक स्थान पर उनका विमान दुर्घटना–ग्रस्त हो गया ।' समाचार समाचार बनकर ही रह गया । आज भी यह गुत्थी उलझी है । आशावादियों की दृष्टि में सुभाष अब भी हैं और निराशावादी उनकी याद में एक हूक भर कर ही रह जाते हैं । किन्तु मेरे शेर ! क्या तुम कभी भी, किसी भी रूप में इस धरती पर आओगे ? अवश्य आओगे, यह मेरा विश्वास है और नहीं तो,

"शहीदों की चिताओं पर, लगेंगे हर बरस मेले
वतन पर मरने वालों का, यही बाकी निशाँ होगा ।"

"करूँगा ही" निश्चय कर लेने पर जमीन की कोई ताकत इंसान को रोक नहीं सकती ।

—स्वामी रामतीर्थ

"अगर बालक को शेर बनने की अनुमति नहीं दोगे तो वह लोमड़ी बन जायेगा ।"

—स्वामी विवेकानन्द

.... और जब मैं सकुशल लौट आया !

आशुतोष शर्मा, ८ 'क'

[चंचल वृत्ति का परिणाम और ईश्वरीय सहायता दोनों का रोमांचक वर्णन, बाल-लेखनी से]

जब मैं अपनी उस पुरानी घटना को स्मरण करता हूँ, तो मेरे सम्पूर्ण शरीर में एक सिहरन-सी दौड़ जाती है।

आज से तीन साल पुरानी घटना है, उस दिन मैं अपनी माता जी और ताई जी के साथ गंगा स्नान को गया था। साथ में मेरा छोटा भाई भी था। सर्दियों की दोपहर में प्रायः गंगा जी पर सन्नाटा ही रहता है। इसी कारण उस दिन भी गंगा जी में कम ही लोग स्नान के लिए आये थे।

हम लोग नाव से उस पार नहाने के लिये पहुँचे। मल्लाह खाना खाने घर चला गया था। उसके दो छोटे-छोटे बच्चे नाव पर खेल रहे थे। हमारी माँ ने पहले हम दोनों को नहला दिया। तत्पश्चात् किनारे पहुँचकर कपड़े पहिनने को कहा।

छोटा भाई तो कपड़े पहनकर बैठ गया; परन्तु मैं इतनी जल्दी कपड़े पहनकर स्नान का आनन्द खोना नहीं चाह रहा था। अतः आनाकानी करता हुआ पानी में ही खेलता रहा। माता जी ने डाँट लगाई और स्वयं नहाने के लिए पानी में धँस गई। इतने में ही ताई जी ने गंगा जल के लिए डिब्बा मँगाया। हम तुरंत डिब्बा लेकर गंगा जी में घुस गए। अचानक जल्दबाजी में हमारे हाथ से डिब्बा छूट कर पानी में जा गिरा। हमने सोचा कि कहीं फिर डाँट न पड़े अतः एक झटके से हम डिब्बे की तरफ लपके। स्वाभाविक रूप से उठी लहरों के साथ डिब्बा और भी आगे पहुँच गया। उसके उठाने के चक्कर में हम भी आगे बढ़ते चले गए। परिणामतः डिब्बा तो हाथ लग गया किन्तु हमारे पैर के नीचे जमीन का कोई पता नहीं था। डर के कारण हमारी बोलने की शक्ति समाप्त हो चुकी थी। हमारा सिर्फ सिर ही ऊपर बचा था तथा दोनों हाथों में कसकर पकड़ा हुआ डिब्बा भी। इसके अतिरिक्त सारा शरीर डूब चुका था। माता जी ने सूर्य को अर्घ्य देने के लिये जैसे ही सिर घुमाया वैसे ही हमें पानी में देखकर सोचा कि यह शायद पानी में खेल रहा है। ऐसा देखकर सोचा कि इसे पानी के बाहर कर आएँ और जैसे ही पैर हमारी तरफ बढ़ाया वैसे ही मालूम पड़ा कि वह भी गढ्ढे में पहुँच गयीं। माता जी ने सोचा कि हम लोग अब संकट में फँसे हैं और गहरे गढ्ढे में हैं, घबड़ाहट के कारण उनके मुंह से बस यही निकला, कि भाभी जी ! अब टाटो गया (टाटो मेरा घर का नाम है) और पूरी जी जान से वह हमारी तरफ बढ़ी। माता जी को आते देखकर ताई जी भी हमारे तरफ बढ़ी और वह भी गढ्ढे में आ गई।

माता जी पूरी शक्ति के साथ एक हाथ से हमको और दूसरे हाथ से ताई जी को किनारे की ओर ढकेलने लगी। कुछ लोगों ने बहुत ऊँचाई से हम तीनों को डूबते देखा और चिल्लाते हुए जब तक हम लोगों के पास आते तब तक हम तीनों लोगों के पैर के नीचे जमीन आ चुकी थी।

हम लोगों को आश्चर्य की बात यह लगी कि न तो

मुझे न ताई जी को और न ही माता जी को तैरना आता था फिर भी उस महाजल समाधि से बच कैसे गये ?

रक्षा करने वाले दयालु व्यक्तियों के पहुचने के पूर्व ही हम सभी सकुशल वापस आ गए थे। उस गढ्ढे में अब तक न जाने कितनी जानें जा चुकीं है। कई दिन तक हम बहुत कमजोरी-सी महसूस करते रहे।

अभी जब वह घटना याद आ जाती है तो सारे शरीर में सिहरन सी दौड़ जाती है। साथ ही साथ ईश्वर के प्रति प्रबल विश्वास भी बढ़ जाता है कि रक्षा करने वाला वही है। यह घटना जब से घटित हुयी तब से मैंने बाहर बदमाशी करना छोड़ दिया और साथ ही साथ गंगा जी में भी। बड़ों की आज्ञा का पालन करना भी हमने इसी घटना से सीखा।

"मैं तो बच्चों में ही भगवान का दर्शन करता हूँ।"

—महात्मा गांधी

× × × ×

"बालक सत्य स्वरूप है। भूलकर भी उसके साथ कृत्रिम व्यवहार न कीजिये।"

—एक विचारक

"करनी का फल"

वीरेन्द्र सिंह, सप्तम 'क'

[कथा प्रतियोगिता – १९७५ (बाल वर्ग) में प्रथम पुरस्कृत]

प्रतियोगिता हेतु कथांश—

विनोद के पिता उससे बहुत परेशान थे क्योंकि वह कोई भी चीज जहाँ से उठाता उसे यथास्थान पर नहीं रखता। इससे वह चीज घर में ढूंढनी पड़ती थी और झल्लाहट अलग होती। कभी कैंची नहीं तो कभी पेंसिल नदारद होती। आखिर खीझ कर उसके पिता ने एक उपाय सोचा। एक दिन उन्होंने विनोद के सभी मित्रों को घर पर बुलाया और उन्हें सब कुछ बताकर कहा, "यदि तुममें से कोई विनोद की इस खराब आदत को सुधार दे तो उसे मैं एक बड़ा इनाम दूंगा।"

सभी मित्रों ने सोचा यदि हम अकेले-२ विनोद को सुधारने का प्रयत्न करेंगे तो यह संभव नहीं। उन लोगों ने मिल कर उसे सुधारने की योजना बनाई। उन्होंने विनोद के पिता को भी इससे अवगत करा दिया। योजना यह थी कि वह सभी लोग विनोद के साथ बैठ कर पिकनिक की योजना बनायेंगे। उसमें विनोद को अवश्य देर हो जाएगी। जब विनोद जल्दी जल्दी उस स्थान पर पहुँचेगा जहाँ से एक साथ पिकनिक पर जाना था, तो कोई भी न मिलेगा। उधर विनोद के पिता फिल्म देखने चले जाएगें। तब विनोद ठीक हो जाएगा। हुआ भी इसी प्रकार।

एक दिन विनोद के साथ बैठकर सभी साथियों ने पिकनिक मनाने की योजना बनाई। योजना इस प्रकार थी कि सभी लोग एक मित्र रमेश के यहाँ रविवार के दिन ठीक नौ बजे पहुँच जायेंगे।

रविवार का दिन आया। सभी मित्र (विनोद को छोड़कर) ठीक नौ बजे रमेश के यहाँ पहुँच गए थे। सभी के हाथ में एक डायरी और पेन था जो वहाँ के सुन्दर कार्य-क्रम को लिखने के लिए था। पिकनिक एक सुन्दर जगह पर (जो गंगा के तट पर था) थी। सभी लोग एक मिनी बस में बैठ कर पिकनिक मनाने चले गये। क्योंकि आधा घण्टा बाद भी विनोद वहाँ उपस्थित नहीं हो पाया था।

उधर घर में विनोद को डायरी और पेन नहीं मिल रहा था। क्योंकि उसने यथा स्थान नहीं रखा था। जब तक विनोद को डायरी मिली बहुत देर हो चुकी थी। जब वह रमेश के घर पहुँचा तो मालूम पड़ा कि सभी मित्र पिकनिक मनाने चले गये हैं। वह बहुत दुखी हुआ।

जब वह घर लौट कर आया तो मालूम पड़ा कि घर में ताला पड़ा है तथा पापा घर के अन्य सदस्यों को लेकर सिनेमा देखने चले गए हैं। अब तो मानों विनोद पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। विनोद ने जल्दी के कारण सुबह जलपान भी नहीं किया था। वह वहीं दरवाजे पर बैठा रहा। जब उसके पिता जी आए तो वह उनसे लिपटकर फूट फूट कर रोने लगा। उसे अपनी "करनी का फल" मिल गया था। उसने पिता जी से क्षमा माँगी कि अब वस्तुओं को वह यथा स्थान ही रखेगा। तभी उसके मित्र भी आ गए। विनोद के पिता ने उनको बहुत धन्यवाद दिया और उनको बहुत सा इनाम दिया। इस प्रकार सभी लोग खुशी खुशी घर चले गये। उस दिन से विनोद ने कभी वस्तुओं को इधर उधर नहीं रखा।

लापरवाह विनोद

हेम कुमार जैन, अष्टम 'क'

[कथा प्रतियोगिता – १९७५ (बाल–वर्ग) में द्वितीय पुरस्कृत कथा]

प्रतियोगिता हेतु कथांश—

विनोद के पिता उससे बहुत परेशान थे क्योंकि वह कोई भी चीज जहाँ से उठाता उसे यथा स्थान नहीं रखता था। इससे वह चीज घण्टों ढूंढनी पड़ती थी और झल्लाहट अलग होती। कभी कैंची नहीं मिलती तो कभी पेन्सिल नदारत रहती। अन्त में खीझकर उसके पिता ने एक उपाय सोचा। एक दिन उन्होंने उसके मित्रों को घर पर बुलाया और उन्हें सब कुछ बताकर उनसे कहा "यदि तुममें से कोई इसकी यह खराब आदत सुधार दे, तो मैं उसे बहुत बड़ा इनाम दूंगा।"

विनोद के सभी मित्रों ने एक उपाय सोचा और विनोद के पिता को बताया तो वे उनके उपाय से सहमत हो गये। मित्रों ने विनोद से कहा, "हमारे प्रिन्सिपल साहब के पास एक बहुत बढ़िया किताब है।" विनोद तो वैसे ही किताबों को पढ़ने का शौकीन था। वह अपने प्राचार्य के पास गया और वह किताब मांगी। प्राचार्य जी भी उसकी लापरवाही को जानते थे। उन्होंने कहा, "यदि मैं तुमको पुस्तक दे देता हूँ तो तुम उसे वापस नहीं लौटाओगे क्योंकि तुम उसे उल्टी सीधी जगह ले जाकर रखदोगे फिर मिलेगी नहीं। वह बहुत महत्व पूर्ण किताब है।" विनोद ने उनके सामने प्रतिज्ञा की "मैं आपकी किताब को छिपाकर ठीक स्थान पर रखूंगा। आपकी किताब आपको सही समय पर वापस करूँगा।" प्रिसिपल साहब ने उस पर विश्वास करके उसे वह किताब दे दी। विनोद बड़ा खुश हुआ। अपने कमरे में रात को पढ़ने लगा। पढ़ते-२ उसे नींद आ गयी। उसी समय सौभाग्य से बारिश आने लगी। मित्रों में से एक कमरे में आया और किताब ले गया।

उनका उपाय था कि यह किताब लायेगा और उसे यथा स्थान नहीं रखेगा तो वह गायब कर लेंगे। खिड़की पर किताब रखने की उन्हें पूरी संभावना थी क्योंकि वह वहीं पर सोता था। अलमारी दूसरी तरफ थी।

बारिश की बूंदे जब उसके ऊपर पड़ीं तो वह चौंक कर उठा और उसका ध्यान किताब की ओर गया। यह सोच कर कि यहीं कही होगी फिर सो गया। परन्तु जब वापस करने की बात याद आयी तो उसने जोर-२ से चिल्लाना प्रारम्भ किया कि मेरी किताब कहाँ गयी और सारा घर सिर पर उठा लिया। जब उसे ध्यान आया कि अरे उसने किताब तो खिड़की पर रख दी थी तो रोना आ गया और जोर-२ से रोने लगा जब उसके पिताजी ने पूछा तो उसने रोने का कारण बताया। उसके पिता जी ने किताब वापस करते हुये उसे सब बताया तो उसे बड़ी ग्लानि हुयी और प्रिन्सिपल साहब की किताब को वापस करके जब लौटा तो पिता जी के सामने आकर बोला कि यदि "वह किताब आप न उठाते तो वह बारिश में भीग चुकी होती। अब मैं कभी भी चीज गलत स्थान पर नहीं रखूंगा।" उसके पिता मुस्कराते हुये अन्दर चले गये। उस दिन से विनोद कभी भी कोई चीज गलत स्थान पर न रखता उसे यथा स्थान पर ही रखता। उसके पिता जी ने सभी मित्रों को बधाई दी। जब विनोद को इन बातों का पता लगा तो वह बहुत हँसा और विनोद के पिता ने सभी मित्रों को दावत दी और एक बिस्कुट का डिब्बा भी। अब विनोद जो चीज जहाँ से उठाता उसे वही रख देता। जब उसे यह घटना याद आती है तो अपने ऊपर हँसता है। ●

बलिदानी आशाराम त्यागी

विवेक माहेश्वरी, सप्तम 'क'

['तेरा वैभव अमर रहे मां, हम दिन चार रहे न रहे'—का एक जीवन्त उदाहरण]

अपने देश के साहसी वीरों की ओजपूर्ण व रोमांचकारी गाथाएँ असंख्य हैं। यदि उनको लिखा जाये तो शायद यदि समुद्र को स्याही माना जाये और पृथ्वी को आधार बनाया जाये, तो भी शायद ही वह पूरा पड़े। असंख्य विस्तीर्ण व असंख्य छोटी हैं। परन्तु प्रत्येक ही हमें सदैव अनुप्राणित करती रहती हैं। उन्हीं में से एक रोंगटे खड़े करने वाली, साहसपूर्ण तथा आशा-संचार करने वाली कथा यहाँ प्रस्तुत है।

भारत—पाकिस्तान युद्ध में अनेकों वीरों ने अपनी बड़ी "माता" के रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति दे दी। उन्हीं में से एक मेजर आशाराम त्यागी भी हैं जिन्हें सम्पूर्ण देश ने 'राष्ट्रपति पदक' देकर सुशोभित किया। कथा इस प्रकार है—

भारत व पाकिस्तान के मध्य हुये संग्राम में सबसे भयानक व रोमांचकारी युद्ध, लाहौर—क्षेत्र में 'इच्छोगिल नहर' के तट पर हुआ और उस युद्ध में विजय हासिल करना अत्यन्त दुर्लभ था। यह कार्य जिस सेनानी को सौंपा गया, वह थे मेजर आशाराम त्यागी। इनका जन्म स्थान मेरठ जिले का फतेहपुर नामक गाँव था। प्रारंभिक शिक्षा प्रसिद्ध कस्बे मोदीनगर में हुई; तत्पश्चात् मेरठ कालेज से एम० ए० करने के बाद सेना में भरती हो गये। सेना में प्रवेश लेने की घटना के अभी लगभग ४ वर्ष ही हुये थे, परन्तु इसी अल्पावधि में सिक्किम मोर्चे पर वीरता प्रदर्शित करने के कारण उन्हें 'राष्ट्रपति पदक' से अलंकृत किया गया था। इस समय ये मेजर भी बनाए गए। शहीद होने के मात्र ३ माह पूर्व १७ जून, १९६५ को कविता देवी के साथ उनका विवाह भी हो गया। अभी उनके पैरों का महावर सूखा भी नहीं था कि यह वज्रपात हो गया। देश की लाज बच गयी पर 'कविता देवी' के माँग का सिंदूर मिट गया।

जिस समय मेजर आशाराम अपने सैनिकों के साथ युद्ध—क्षेत्र में आगे बढ़ रहे थे, उसी समय उनके सीने में शत्रु की दो गोलियाँ लगीं। वे घायल हो गये और शरीर रक्त से सिक्त हो गया। घायलावस्था में ही उन्होंने शत्रु के ऐसे टैंक को नष्ट कर दिया जो भीषण रूप से गोलियाँ बरसा रहा था। इसी समय एक गोली और लगी; अब वे चलने में असमर्थ हो गये। लेटे—लेटे उन्होंने शत्रु के दो और टैंकों को नष्ट कर दिया। इसी समय दो गोलियाँ और लगीं और वह वीर धरती पर गिर पड़ा। इस समय भी वे अपनी अंतिम सांस तक अपने सैनिकों को अनुप्राणित करते रहे। उनकी ललकार सुनकर भारतीय सैनिकों ने सिर पर कफ़न बाँधकर शत्रु को दूर तक खदेड़ दिया। वे अमृतसर के अस्पताल में लाये गये। दम तोड़ने से पूर्व उन्होंने अंतिम इच्छा व्यक्त की कि मेरी माँ यह देख ले कि मैंने पीठ पर नहीं सीने पर गोली खायी है। ऐसी थी उस वीर की गरिमा।

उनके पिता को जब यह सूचना प्राप्त हुयी तो वे तुरन्त अमृतसर को दौड़े। परन्तु खेद। तब तक वह वीरात्मा चिरसमाधि ले चुकी थी। उनका शव सैनिक जीप में फतेहपुर लाया गया। पूरे भारत में शोक की

लहर दौड़ गयी। सभी ग्रामीणों ने अपने वीर पुत्र को वीरोचित सम्मान दिया। सम्पूर्ण देश ने उनको भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की और उस वीरात्मा के शव की उसके गाँव वालों ने २१ गोलियाँ दागकर पूरे सैनिक सम्मान के साथ अन्त्येष्टि कर दी।

इस प्रकार वीरवर आशाराम त्यागी पार्थिव शरीर से तो हमारे मध्य नहीं हैं किन्तु उनका यश, वीरत्व, साहस तथा देशहित में बलिदान हमको आज भी प्रेरणा दे रहा है। ईश्वर! हमें शक्ति दे, सहिष्णुता दे जिससे हम भी अपने देश व समाज के ऋण का मूल्य चुका सकें।

"जिस शिक्षा में 'मनुष्य' बनाने की शक्ति नहीं है। वह शिक्षा नितान्त अभावात्मक है। अभावात्मक शिक्षा मुत्यु से भी बुरी है।"

—स्वामी विवेकानन्द

"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि नैतिक जीवन पर शिक्षा न आधारित होगी तो आने वाली महाविपत्ति से राष्ट्र को बचाना नितान्त असंभव हो जायेगा।"

—भू० पू० राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद

क्रान्ति–माला का एक प्रसून

सुनील जैन, दशम 'क'

[क्रान्ति–युग का एक प्रेरक उदाहरण किशोर मन की उद्दाम - भावनाओं के साथ ।]

वह क्रान्तिकारी दल का एक सदस्य होना चाहता था, परन्तु उसका परिवार राज-भक्त था, गौर-चर्मियों को ही जग-संचालक मानने वाला ।

उन्हीं दिनों वीर सावरकर के नेतृत्व में इंग्लैण्ड में एक क्रान्तिकारी-दल सक्रिय था। उसने मन में एक योजना बनायी और पिता से बोला, "पिता जी, मैं उच्च शिक्षा प्राप्त करने-हेतु इंग्लैन्ड जाना चाहता हूँ ।" पिता जी प्रसन्न हो गये और उसे जाने की सहर्ष आज्ञा दे दी एवं प्रभूत धन-राशि की व्यवस्था कर दी ।

उसे इंग्लैन्ड जाते समय हवाई अड्डे पर उसके पिता समझा रहे थे, "बेटा, देखो, तुम काफी दूर जा रहे हो । कोई भी कार्य ऐसा न हो कि जिससे परिवार की प्रतिष्ठा पर कलंक लगे ।" वह गम्भीरता से बोला, "पिता जी, ऐसा मैं कोई कार्य नहीं करूँगा, वरन् ऐसा कार्य करूँगा, जिससे हमारा खान दान सितारों की भाँति प्रकाशित रहे ।" परिवार में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी किन्तु क्या वे इस बात की सूक्ष्मता को समझ सके ? कदाचित उस समय नहीं ।

इंग्लैन्ड आकर, वह वहीं के अनुसार बदलने लगा । खान-पान, रहन-सहन सब कुछ अंग्रेजी पद्धति के अनुसार हो गया, यहाँ तक कि वह अपने संकल्प को भी भुला बैठा, किन्तु जब उसने वीर सावरकर का एक वक्तव्य सुना, बाल-जीवन में ग्रहण किये संस्कार फिर से जागृत हो गये और फिर एक दिन...................... ।

वह इण्डिया-हाउस में वीर सावरकर के सम्मुख खड़ा है । "तुम्हारा नाम क्या है ?" सावरकर ने पूछा ।

"मदन लाल धींगरा" उसने परिचय दिया ।

"तुम यहाँ क्यों आये हो ?"

"आपका शिष्यत्व ग्रहण करने ।"

"मेरा ही शिष्यत्व तुम्हें क्यों चाहिए ?"

"क्योंकि आप ही के संसर्ग से मेरे मनका संजोया हुआ चिर-आभीप्सित पूर्ण हो सकेगा ।"

"वह कौन-सा तुम्हारा अभीप्सित है ?"

"भारत माँ को स्वतन्त्र कराने में मेरा भी योगदान हो ।"

सावरकर ने कहा, "ठीक है, समय आने पर तुम्हें दायित्व सौंपा जायेगा ।"

अब कभी-कभी वह सावरकर से मिलने लगा ।

सन् १९०८ को अंग्रेज 'जहाँगीर-हाल लंदन' में १८५७ की क्रान्ति की असफलता की स्वर्ण-जयन्ती मना रहे थे । भारतीय-स्वतन्त्रता-हेतु की गयी क्रान्ति को 'गदर और विद्रोह' की संज्ञा दी गयी थी ।

भारत माँ के अप्रतिम साधक वीर सावरकर के लिए यह बात असहनीय थी । उन्हें उस सभा के अध्यक्ष 'कर्जनवायली' के वे सारे कार्य अच्छी तरह से याद थे । किस निर्ममता के साथ उसने हिन्दू-ललनाओं को विधवा तथा भ्रष्ट किया । उन्होंने एक सभा स्वयं आयोजित की,

जिसमें मदनलाल धींगरा ने क्रोधावेश में यह प्रतिज्ञा की, "मैं प्रण करता हूँ कि इस तथाकथित स्वर्णजयन्ती में कोई न कोई अवश्य ही मारा जायेगा।"

उपयुक्त समय पर उसी शेर ने सभा के अध्यक्ष कर्जनवायली को ही गोली से भून दिया और भारतीय स्वाभिमान का प्रतीक स्वरूप स्वयं अटल, अडिग खड़ा रहकर सहर्ष अपने को पुलिस को भी सौंप दिया।

जब उससे पूछा गया, तो क्रोध से बोला, "तुम हमारी स्वतन्त्रता को गदर कहो, विद्रोह कहो, हमारे क्रान्तिकारियों का उपहास करो और हम खड़े देखते रहें। हम तो तुम्हें भारत से निकालकर ही प्रसन्नता मनायेंगे। यह तो मैंने उसका श्री गणेश किया है।"

लेकिन यहाँ बैठे 'सर' आगाखाँ, 'सर' सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इस पवित्र कार्य की निन्दा की, क्योंकि वह 'सर' की उपाधि से विभूषित थे, अतः इस निन्दा के अलावा उनसे कुछ अपेक्षा करना अनुचित ही था। वास्तव में जब एक ओर भारत वसुन्धरा पर आये कष्टों को दूर करने में यहाँ के पुत्रों ने अपना सर्वस्व होम किया, वहाँ ऐसे भी कुछ उदाहरण हृदय को अपार कष्ट दे देते हैं। वीर सावरकर ने अकेले इस व्यवहार की घोर निन्दा की। एक सच्चे भारतीय के लिए यह स्वाभाविक ही था।

जज के द्वारा प्रश्नोत्तर करते समय मदन ने कहा, "मैं मानता हूँ कि मैंने एक अंग्रेज की हत्या की है; किन्तु वह भारत माता के लिए की है जिसने राम-कृष्ण को जन्म दिया है, जिसके लिये राम ने रावण का और कृष्ण ने कंस का बध किया और गीता का उपदेश दिया।"

एक वक्तव्य जो छिपा लिया गया था, इस प्रकार था, "जो सैंकड़ों देश भक्त लोगों को अमानुषिक फाँसी और काले पानी की सजायें हो रही हैं। मैंने उसी अत्याचार का साधारण बदला अंग्रेजों के रक्त से लेने का प्रयास किया है। इसके लिए मैंने अपने विवेक के अतिरिक्त किसी से परामर्श नहीं ली है, किसी के साथ षड़यन्त्र नहीं किया है। मैंने तो केवल अपना कर्तव्य पूर्ण करने का प्रयत्न किया है। एक जाति, जिसको विदेशी संगीनों से दबाकर रख रहे हों, समझ लेना चाहिए कि वह बराबर संघर्ष कर रही है। एक निशस्त्र जाति के लिए खुला युद्ध तो असंभव है। मैं हिन्दू होने के नाते यह समझता हूँ कि जो मातृ भूमि का अपमान सहता है, वह भगवान का अपमान करता है। उस भूमि का हित ही राम एवं कृष्ण की सच्ची भक्ति है। भारतवासी केवल इतना ही कर सकते हैं कि वे मरना सीखें और इसका एक मात्र उपाय है कि वे स्वयं मरें। यहीं कारण है कि मै मरूँगा। मुझे इस बलिदान पर गर्व है। वन्देमातरम्।"

२७ जुलाई को उसे अन्तिम बार अदालत में ले जाया गया। आज वह खुलकर बोल रहा था। उसने कहा, "मैं अपने ऊपर किसी का अधिकार नहीं मानता हूँ, अतः आप जो चाहें करें। मैंने कोई अपराध नहीं किया है। जिस प्रकार जर्मनी को इंग्लैन्ड पर राज्य करने का अधिकार नहीं है, उसी प्रकार अंग्रेजों को भी भारत पर राज्य करने का कोई अधिकार नहीं है।"

तत्पश्चात उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गयी। इसके कारण उनके पिता ने एक अंग्रेज अफसर को तार द्वारा बतलाया, "इसने तो कुल का नाम डुबो दिया। ऐसे पुत्र को मैं अपना पुत्र नहीं मानता।"

उस वीर बालक से जब उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गयी तो बोला, "मेरे माता पिता को संदेश भिजवा देना कि मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है, जिससे कुल की प्रतिष्ठा पर कोई धब्बा लगे।"

किन्तु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि पिता ने उन्हें पुत्र ही मानने से इन्कार कर दिया तो बोले, "कोई बात नहीं। माता-पिता मुझे पुत्र न माने, किन्तु भारत माता तो मानती है।"

और इसके बाद 'वन्देमातरम्' के उद्घोष के साथ चर्खी घूमी और वह सदा-सर्वदा के लिए कोटि-२ भारत-वासियों के हृदयों में अमर हो गया।

मेरे दो प्रश्न ?

नीरज अग्रवाल, सप्तम क'

[इतिहास का वह पुरातन पृष्ठ, जिसे बहुत बार हम सब ने सुना है; किन्तु गुना इस बाल छात्र ने जिसके ज्वलन्त प्रश्न अन्त में आप पढ़ेंगे ।]

कौरव और पाण्डव जब किशोरावस्था में आ गये तो कौरवों के पिता धृतराष्ट्र के मन में एक विचार आया कि अब ये सभी बालक किशोर हो गए हैं; इनकी शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये । इसके लिए उन्होंने द्रोणाचार्य को उपयुक्त समझकर सभी बालकों को शिक्षा देने के लिये नियुक्त कर दिया ।

एक दिन की बात है; सभी बालक कुछ पढ़ाई के बाद मध्यावकाश में खेल रहे थे । बालकों को खेलते हुये देख रहा था, एक भील सरदार का पुत्र 'एकलव्य' ।

खेलते हुए बालकों की गेंद एक कुएँ में चली गई, तो सभी बालक उस गेंद को कुएँ से बाहर निकालने का उपक्रम करने लगे । जब वे गेंद को कुएँ से बाहर नहीं निकाल सके तो उन्होंने द्रोणाचार्य से गेंद निकालने के लिये निवेदन किया । द्रोणाचार्य ने गेंद निकालने के लिए एक तीर लेकर गेंद पर इस प्रकार मारा कि गेंद फटी भी नहीं और तीर गेंद पर गड़ भी गया । तत्पश्चात् उन्होंने इसी प्रकार दूसरा तीर पहले वाले तीर पर गाड़ दिया । इसी प्रकार द्रोणाचार्य तीर गाड़ते गए और जब तीर ऊपर तक आ गए तो उन्होंने सबसे ऊपर वाले तीर को पकड़कर और खींच कर गेंद निकाल ली ।

दूर खड़ा एक लव्य यह सब देख रहा था । वह द्रोणाचार्य की वाण-विद्या पर मुग्ध हो गया । जब सभी बालक घर चले गए, तो वह द्रोणाचार्य के पास पहुँचा और उन्हें अपना परिचय देकर उनसे वाण विद्या सीखने की इच्छा प्रकट की । द्रोणाचार्य के मन में दो विचार आए । पहला तो यह कि जब यह बालक मेरे पास वाण-विद्या सीखने आया है तो इसे निराश करना न्यायसंगत नहीं । और दूसरा विचार आया कि राजकुमारों के साथ एक भील बालक की शिक्षा उचित नहीं । बाद में उन्होंने एकलव्य से कहा कि मुझे इतना अवकाश नहीं कि मैं तुम्हें वाण-विद्या सिखा सकूं, अतः मैं तुम्हें शिक्षा देने में असमर्थ हूँ । परन्तु एकलव्य तो मन से 'द्रोणाचार्य' को गुरु मान चुका था । अतः घर पहुँच कर उसने मिट्टी की द्रोणाचार्य की मूर्ति स्थापित कर ली । अब वह नित्य सुबह मूर्ति की पूजा करके वाण-विद्या का अभ्यास करने लगा । उसके लिये तो वह मूर्ति सजीव हो गयी थी । अतः उसे स्वयं ही धनुर्विद्या का अत्यन्त ज्ञान हो गया । और वह धनुर्विद्या में बहुत निपुण हो गया ।

एक दिन एकलव्य फिर से गुरु द्रोणाचार्य की पाठशाला में पहुँचा तथा वहां से कुछ दूरी पर बैठ गया ।

वहाँ पर गुरु द्रोणाचार्य सभी बालकों की धनुर्विद्या की परीक्षा ले रहे थे । उन्होंने एक मिट्टी की चिड़िया बनाकर एक पेड़ पर रखी थी । उसके आगे एक चूड़ी टँगी थी । शर्त यह थी कि बाण इस प्रकार मारा जाये कि बाण चूड़ी के अन्दर से होता हुआ चिड़िया की आँख को लगे और चिड़िया गिर जाये ।

सर्वप्रथम द्रोणाचार्य ने एक कौरव बालक को बुलाया

और पूछा कि तुम्हें क्या-२ दिखाई दे रहा है? उस बालक ने कहा कि मुझे वह सब कुछ दिखाई दे रहा है जो मेरे आस-पास है। तो द्रोणाचार्य ने उसको हटाकर दूसरे को बुलाया। और वही प्रश्न पूछा, जो पहले से पूछा था, उसने भी उसका पहले की ही तरह उत्तर दिया। द्रोणाचार्य ने उसको भी हटा दिया। और सभी को बारी-बारी से बुलाकर वही प्रश्न पूछा। अर्जुन के अतिरिक्त सभी ने पहले की तरह उत्तर दिया। द्रोणाचार्य ने अर्जुन को बुलाकर उससे भी प्रश्न पूछा। अर्जुन ने कहा कि मुझे केवल चिड़िया की आंख दिखाई दे रही है। द्रोणाचार्य ने अर्जुन को बाण चलाने की अनुमति दे दी। जब अर्जुन ने तीर चलाया तो वह चूड़ी में से होता हुआ चिड़िया की आँख को छूकर गिर पड़ा। एकलव्य के मुंह से स्वभावतः निकल पड़ा कि वाह! वाह! निशाना तो बढ़िया था परन्तु शक्ति बिल्कुल नहीं। इस आवाज को सुन कर अर्जुन सहित सभी राजकुमार हत-प्रभ रह गये और द्रोणाचार्य के पास एकलव्य को लेकर चले गये। एकलव्य को देखकर द्रोणाचार्य ने कहा, "अरे एकलव्य! तू यहाँ कैसे आया?" इससे पहले कि एकलव्य कुछ उत्तर देता, सभी बालक उसे अपशब्द कहते हुए कहने लगे कि यह वहाँ पर बैठा हुआ बक-बक कर रहा था। सभी उसे पकड़कर बाण चलाने के स्थान पर ले गए और उसे बाण चलाने के लिये मजबूर कर दिया। एकलव्य ने अपनी नीच जाति के कारण सकुचाते हुए परन्तु अत्यन्त आत्म विश्वास के साथ कान तक खींचकर तीर चलाया। वह बाण चूड़ी में से होता हुआ, चिड़िया की आँख को छेद कर उसे बहुत दूर तक ले गया। उसकी इस योग्यता को देख कर सभी राज-कुमार व द्रोणाचार्य स्वयं आश्चर्यचकित हो गये और अपने दाँतों तले उँगली दबा ली। अर्जुन किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया और अपने पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदने लगा। उसने द्रोणाचार्य से कहा, "गुरू जी, आपने तो कहा था कि विश्व में कोई मुझसे अच्छा धनुर्धर नहीं होगा, परन्तु आपका कथन एकलव्य ने असत्य प्रमाणित कर दिया। आप मुझे और ऊँची बाण विद्या दीजिये। अब द्रोणाचार्य ने सोचा कि यदि अर्जुन के मन में यह क्षुद्र भावना बसी रही तो उसकी प्रतिभा कुंठित हो जायेगी। अतः उन्होंने उसका मनोबल बढ़ाने के लिये उसे और अधिक परिश्रम से सिखाना आरम्भ किया।

एक बार अपने कुछ प्रमुख शिष्यों को लेकर द्रोणा-चार्य बन-विहार को निकले। उनके साथ अर्जुन का प्रिय कुत्ता भी था। जब वे लोग बन में बहुत दूर पहुँच गये और यह विश्वास हो गया कि यहाँ हमारे अतिरिक्त कोई नहीं है तो उन्होंने अर्जुन को एकांत-अभ्यास की शिक्षा दी। अर्जुन का प्रिय कुत्ता वहीं इधर-उधर घूमने लगा। एक स्थान पर वह भूंकने लगा। परन्तु कुछ देर बाद उसका भूंकना बिल्कुल बन्द हो गया। वह कुत्ता दौड़ता हुआ द्रोणाचार्य व अर्जुन के पास गया। उसकी दशा देखकर सब विस्मित हो गये। कुत्ते का मुख खुला था तथा उसमें सात-आठ बाण इस प्रकार लगे थे कि उसके मुख से खून भी नहीं निकला था और वह चाहकर भी नहीं भूंक पा रहा था। सब सोचने लगे कि ऐसा धनुर्धर कौन होगा? अन्त में कुत्ते के बताए मार्ग पर चलने पर उन्होंने देखा कि एक युवक बाण विद्या का अभ्यास कर रहा है। सामने एक मूर्ति रखी है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी अभी-अभी पूजा की गयी है। वह एकलव्य था। वह शब्द-भेदी बाण के अभ्यास में रत था। द्रोणाचार्य ने उससे पूछा "तुम्हारे गुरू कौन हैं?" उसने उत्तर दिया "द्रोणाचार्य"। तभी एकलव्य द्रोणाचार्य को पहिचान गया और कहने लगा कि आप ही तो मेरे परमपूज्य गुरू हैं। आपको विस्मृत नहीं हुआ होगा कि मैं आप से विद्या सीखने आया था पर आपने इंकार कर दिया। तब मैंने आपकी मूर्ति बनाकर अभ्यास आरम्भ कर दिया। आपकी ही कृपा से मुझे बाण विद्या में ऐसी कुशलता प्राप्त हुयी है।

द्रोणाचार्य ने कहा कि अब भी मेरा कहा वचन मिथ्या प्रतीत हो रहा है। तभी उनके मन में एक विचार सहसा ही कौंधा और उन्होंने उसका तुरन्त कार्यावयन किया। उन्होंने एकलव्य से कहा, "तुमने मुझे अपना गुरू माना है। तुमने मेरी प्रेरणा से धनुर्विद्या में योग्यता प्राप्त की और मैंने तुम्हारी परीक्षा भी ले ली।

तुम उसमें उत्तीर्ण भी हुए, अब मेरी गुरु-दक्षिणा लाओ। एकलव्य ने कहा, "मेरे प्राण भी आपके लिए अर्पित हैं, आप कुछ भी माँगिये।" द्रोणाचार्य ने उसका दाहिने हाथ का अंगूठा माँगा। एकलव्य ने सहर्ष व बिना हिचकिचाते हुये अपने दाहिने हाथ का अंगूठा दे दिया। दाहिने हाथ का अंगूठा चले जाने के कारण अब वह बाण-विद्या का प्रदर्शन या अभ्यास करने से विमुख होने के लिए मजबूर हो गया। इस घटना से मेरे मन में द्रोणाचार्य के व्यवहार के सम्बन्ध में प्रश्न उठते हैं—

(१) क्या अपना वचन सत्य प्रमाणित करने के लिये गुरु का एक बालक से उसके दाहिने हाथ का अंगूठा माँगना न्याय संगत था ?

(२) क्या अपने एक प्रिय शिष्य को प्रसन्न करने व एक प्रतिभा को जागृत करने के लिए दूसरी प्रतिभा को कुंठित करना द्रोणाचार्य जैसे गुरू के लिये उचित था ?

मेरा मन तो इसको स्वीकार नहीं करता। परन्तु शायद अनेक कूटनीतिज्ञ व शास्त्रज्ञों के अनुसार वह सत्य हो। पाठक इसका उत्तर स्वयं सोचें।

"ब्रह्मचर्य ही हमें वह आत्मबल देता है जिसके द्वारा हम संसार को जीत सकते हैं।"

— पं० मदन मोहन मालवीय

जीन

दुर्गेश कुमार, एकादश (जीव०)

[नवीन शोध पर आधारित एक विवेचनात्मक अभिव्यक्ति]

वास्तव में जीन शब्द, जब से डा० हरगोविन्द खुराना ने इसका संश्लेषण ज्ञात किया, अत्यन्त प्रचलित हो गया है, किन्तु इस जीन के विषय में जानकारी प्रायः नगण्य सी ही रहती है। इस विषय का प्रारम्भ निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है—

जिस प्रकार एक देश में कई लोग निवास करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति देश की एक इकाई की भाँति कार्य करता है, ठीक इसी प्रकार जीव की निर्मित कोशा या कोशिका (Cell) से होती है। इस अत्यन्त छोटी कोशा में अनेक कार्य सदैव होते रहते हैं। उन सब कार्यों के उचित प्रकार से होते रहने के लिए उसमें नियन्त्रण-कक्ष की भाँति केन्द्रक होता है। इस केन्द्रक के अन्दर एक प्रकार का द्रव्य होता है, जिसे केन्द्रक-द्रव्य (Nucleoplasm) कहते हैं। इस केन्द्रक-द्रव्य में दो प्रकार के अम्ल पाये जाते हैं– डिआक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल (DNA) तथा राइबोन्यूक्लिक अम्ल।

इनके अतिरिक्त केन्द्रक में प्रोटीन (Protein), बसा (Fat) एवं लवण (Salt) आदि पाये जाते हैं। अधिकांश प्रोटीन्स न्यूक्लिक अम्लों के साथ अनुबद्ध रहती हैं, अतएव उन्हें न्यूक्लियोप्रोटीन (Nucleoprotein) कहते हैं। एक न्यूक्लियोप्रोटीन का नाम क्रोमैटिन (Chromatin) है, जो DNA युक्त होती है और महीन धागों के सदृश समूहों में सम्पूर्ण केन्द्रक-द्रव्य में छितरी रहती है।

यही क्रोमैटिन कोशिकाओं के विभाजन की अवस्था में छोटे-छोटे स्पष्ट धागों में बँट जाती है, उस समय यह RNA से संयुक्त हो जाती है और तब इन्हें क्रोमैटिन न कहकर गुण सूत्र या क्रोमोसोम (Chromosome) कहते हैं। वास्तव में ये ही सबसे महत्वपूर्ण संरचनायें हैं। इनमें अपना विशिष्ट संगठन व कार्य होता है। इनकी यह विशिष्टता पीढ़ी दर पीढ़ी स्थाई स्वरूप में रहती है। गुणसूत्र जन्तुओं व वनस्पतियों के आनुवंशिक लक्षणों (Hereditary Characteristics) को एक पीढ़ी (Generation) से दूसरी पीढ़ी में ले जाते हैं। इन विविध लक्षणों को पीढ़ी दर पीढ़ी ले जाने का श्रेय क्रोमोसोम्स के विशिष्ट सूक्ष्म भागों को होता है, जिन्हें जीन्स कहते हैं।

वास्तव में जीन्स आनुवंशिक लक्षणों को दूसरी पीढ़ी में ले जाने वाली इकाइयाँ होती हैं, जो कि एक ही किन्तु विशेष गुण की वाहक (Carrier) होती हैं। इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप की सहायता से किये जीन्स के अध्ययन से जो प्रमाण मिलते हैं, वे निम्नलिखित हैं—

"एक जीन DNA के अणु का एक ऐसा खण्ड होता है, जो किसी विशेष प्रकार की प्रोटीन का संश्लेषण करता है। इन खण्डों को सिस्ट्रोन (Cistron) कहते हैं।"

साधारणतया यह कथन विशेष महत्व का प्रतीत नहीं होता, किन्तु वास्तव में यह बात जीव, जीवन तथा जीव-विकास के सारे रहस्य को व्यक्त करती है।

कोशिकाओं में जीव-शक्ति (Vital-power) को उत्पन्न करने के लिए जो चयापचय (Metabolism) की क्रिया होती रहती है, उसके पूर्ण होने में अनेक रसायनिक अभिक्रियायें होती हैं, जो एक विशिष्ट एन्जाइम (Enzyme) या जटिल प्रोटीन की सहायता से पूर्ण होती हैं। इनका संश्लेषण जीन्स के ही द्वारा होता है। इस प्रकार जीन्स के कारण DNA में निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं—

सर्व प्रथम विशेषता–उसमें होने वाला द्विगुणन (Replication or Duplication) है। DNA का अणु, केन्द्रक में उपस्थित चारों DNA न्यूक्लियोटाइड अणुओं से अपने ही समान अणुओं को संश्लेषित करके दोगुना (Double) हो जाने की क्षमता रखता है। यह द्विगुणन सदैव कोशिका के विभाजन की अवस्था से पूर्व नियमित रूप से होता है। इसे विभाजनान्तराल–प्रावस्था (Interphase) कहते हैं।

DNA की दूसरी विशिष्टता उसमें होने वाला लित्यन्तरण (Transcription) है। इसके अंतर्गत DNA थायमीन (Thymine) के स्थान पर यूरेसिल (Uracil) नामक नाइट्रोजन के क्षार (Nitrogenous base) के साथ संयुक्त होकर अपने स्वभाव को पूरी तरह RNA के अनुसार ढाल लेता है। इस कार्य में DNA के अणु की जीन्स ही अपने को रासायनिक स्तर पर RNA में संश्लेषित करती हैं।

तृतीय विशिष्टता–उत्परिवर्तन (Mutation) का होना है। कभी-कभी द्विगुणन एवं लिप्यन्तरण के समय न्यूक्लियोटाइड-श्रृंखला के क्रम में अव्यवस्था हो जाने के कारण जीन्स के स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है। इन परिवर्तनों को जीन उत्परिवर्तन (Gene-Mutation) कहते हैं। और यही परिवर्तित जीन्स सन्तानों में परिवर्तित लक्षणों को ले जाते हैं और क्रमशः जब यही क्रम लाखों–करोड़ों वर्षों तक चलता है तो एक नयी जाति की निर्मिति होती है। यही उद्विकास (Evolution) का सिद्धाँत (Principle) है।

इस प्रकार जीन के उपर्युक्त विवरण से वह ज्ञात हो जाता है कि वास्तव में जीन्स जीव के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जो शरीर में अगणित कार्यों का संचालन करती हैं और कालान्तर में एक अभिनव जाति की सृष्टि भी कर देती हैं।

आओ बनायें–

विद्युत जनित्र

अनूप रस्तोगी, नवम 'क'

[विज्ञान के छात्र की रुचि व उसकी इस विषय में पैठ की एक झांकी ।]

'ऊर्जा–ऊर्जा' सम्पूर्ण विश्व में प्रत्येक स्थान पर ऊर्जा विद्यमान है। ऊर्जा के ही द्वारा हम अपने सब कार्य सम्पादित करते हैं। यह ऊर्जा अनेक प्रकार की होती है, परन्तु हमारे जीवन में यांत्रिक ऊर्जा का विशेष महत्व है। यांत्रिक ऊर्जा से हमको कार्य करने के लिये शक्ति प्राप्त होती है और यांत्रिक ऊर्जा से हमको प्रकाश और उष्मा भी प्राप्त होती है।

जब ओरेस्टेड ने सन् १८२० में विद्युत चुम्बक का आविष्कार किया था तो इस आविष्कार से प्रभावित होकर माइकेल फैराडे ने यह सोचा कि जब विद्युतधारा से चुम्बकीय क्षेत्र का निर्माण हो जाता है तो चुम्बकीय क्षेत्र से विद्युत धारा भी उत्पन्न की जा सकती है। उन्होंने एक तार कुंडली से एक धारामापी को सम्बन्धित कर कुंडली में एक छड़ चुम्बक रख कर अपनी कल्पना को साकार करने का प्रयास किया, परन्तु सफल नहीं हुये। अन्त में एक दिन क्रोध में आकर उन्होंने चुम्बक को कुंडली के भीतर फेंक दिया और देखा कि धारामापी में थोड़ा विक्षेप हुआ। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाल कर निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किया :—

"जब किसी चुम्बकीय क्षेत्र में किसी तार की कुंडली को तीव्र गति से घुमाया जाता है तो कुंडली में विद्युत धारा उत्पन्न हो जाती है।"

अब हम इसी सिद्धांत पर आधारित एक साधारण टार्च के बल्ब को जलाने के लिये जेनरेटर बनायेंगे।

सामग्री–एक कुचालक पदार्थ की छड़ (लकड़ी), एक छड़ चुम्बक, ताँबे का तार, लकड़ी का बोर्ड।

विधि–सर्व प्रथम कुचालक पदार्थ की छड़ को लेकर उसके एक सिरे पर छड़ चुम्बक बाँध देते हैं और चुम्बक पर ताँबे का तार थोड़ी-२ दूर पर लपेट देते हैं। तार के सिरों में से एक सिरे को बल्ब के '+' ध्रुव पर और दूसरे सिरे को '—' ध्रुव से जोड़ दीजिये। इसके पश्चात् छड़ के दूसरे सिरे को तार इत्यादि की सहायता से हैंडिल का स्वरूप दे दीजिये और इस सामान को एक लकड़ी के तख्ते पर इस प्रकार स्थित कर लीजिये कि हैंडिल को घुमाने पर छड़ बिना किसी रोक–रुकाव के घूम सके।

लीजिये अब आपका जनित्र तैयार है। बस विद्युत धारा उत्पन्न करने की देर है, इसके लिये आप हैंडिल को जोर से घुमाइये तो आप देखेंगे कि बल्ब जलने लगता है और आप के घर में भी एक नन्हा पावर हाउस उत्पन्न हो गया है।

क्रिकेट के कीर्तिमान

संजय गर्ग, नवम 'क'

[क्रीड़ा–जगत का यह खेल–क्रिकेट कभी Royal Game था। आज प्रत्येक बच्चे का यह प्रिय खेल बन चुका है। एक बच्चे द्वारा अपने प्रिय खेल की कुछ चमकती झांकी, खिलाड़ियों के साथ।]

क्र०	विवरण		नाम (देश)	संख्या
१–	टेस्ट में सर्वाधिक स्कोर	–	जी०एस० सोबर्स, अविजित (वेस्ट इंडीज)	३६५
२–	एक ही टेस्ट की एक पारी में खिलाड़ियों के सर्वाधिक शतक	–	(आस्ट्रेलिया के)	५
३–	एक टेस्ट की पारी का न्यूनतम स्कोर	–	(न्यूजीलैण्ड का इंग्लैण्ड के विरुद्ध)	२६
४–	टेस्ट जीवन में सर्वाधिक विकेट	–	लांस गिब्स (वेस्ट इंडीज)	३०९
५–	टेस्ट जीवन में विकेट कीपर द्वारा सर्वाधिक कैच तथा स्टम्प	–	एलननाट (इंग्लैण्ड)	२१५
६–	एक टेस्ट पारी में सर्वाधिक कैच	–	ग्रेग चैपल (आस्ट्रेलिया)	७
७–	एक टेस्ट श्रृंखला में व्यक्तिगत सर्वाधिक शतक	–	सी० एल० वेलकॉट (वेस्ट इंडीज)	५
८–	टेस्ट क्रिकेट का पहला शतक	–	१८७७ में बैनरमैन (आस्ट्रेलिया), अविजित के द्वारा इंग्लैण्ड के विरुद्ध	१६५
९–	पिच जहाँ पर पहला क्रिकेट टेस्टमैच खेला गया	–	मेलबोर्न (आस्ट्रेलिया)	
१०–	१८७७ से लेकर १७ फरवरी, १९७६ तक भारत तथा न्यूजीलैण्ड के तीसरे क्रिकेट मैच तक खेले गये टेस्ट मैच	–		७७७
११–	अभी तक व्यक्तिगत सर्वाधिक टेस्ट रन	–	जी० एस० सोबर्स (वेस्ट इंडीज)	८०३२

ज्ञान – पहेली

विजय कुमार, IX 'A' कला

[१] एक व्यापारी ने दूसरे व्यापारी से शर्त लगाई कि वह उसे रु० १,००,००० देगा और उसके बदले में वह उसे पहले दिन एक पैसा देगा, दूसरे दिन वह उसके दुगुने पैसा देगा व इसी प्रकार एक माह (३१ दिन) तक देता रहेगा। बताओं कौन व्यापारी लाभ में और कौन क्षति में रहेगा ?

[२] (माना मोहन की आयु X वर्ष थी)
मोहन की आयु का $\frac{1}{6}$ भाग बाल्यावस्था का था, उसकी आयु का $\frac{1}{12}$ भाग बीत जाने पर उसने अपनी दाढ़ो बढ़ाई, तत्पश्चात् अपनी आयु का $\frac{1}{7}$ भाग बीत जाने पर उसने विवाह किया, विवाह के ५ वर्ष बाद उसे एक पुत्र लाभ हुआ। पुत्र उसकी आयु के $\frac{1}{2}$ भाग तक जीवित रहा, मोहन अपने पुत्र की मृत्य के ४ वर्ष बाद मर गया, तो (X)का मान ज्ञात करो।

[३] एक घन से० मी० वायु में 27×10^{18} अणु होते हैं और यदि किसी छिद्र में से १०,००,००० अणु प्रति सेकेण्ड निकलते हों तो एक घन से०मी वायु को उस छिद्र में से निकलने के लिये कितना समय लगेगा।

उत्तर- (१) दूसरा व्यापारी क्षति में रहेगा; क्योंकि वह पहले को 53,68,709 रु० 12 पै० देगा। (२) मोहन की आयु ८४ वर्ष (३) ८,४०,००० वर्ष।

प्रधान मंत्री का बीस सूत्रीय कार्य क्रम

२६ जून, १९७५ को राष्ट्रपति द्वारा आपात कालीन स्थिति की घोषणा की गयी । इसमें कोई संदेह नहीं कि उस घोषणा के पूर्व देश की स्थिति बड़ी भयावह हो गयी थी, प्रत्येक क्षेत्र में अनुशासनहीनता, अस्थिरता विघटन का बोल बाला था । औद्योगिक क्षेत्र में हड़ताल तथा ताला बन्दी के कारण उत्पादन गिर रहा था, आवश्यक वस्तुओं के मूल्य आकाश छू रहे थे, तस्करी एवं चोरबाजारी खुलकर हो रही थी । ट्रेनें समय पर नहीं आ रहीं थी जिससे यातायात अस्तव्यस्त हो रहा था, कर्मचारियों का समय पर पहुँचना अपवाद हो रहा था । ऐसे समय में सरकार का यह कदम बहुत ही उचित उठा जिसके बिना, देश को विघटित होने से रोका नहीं जा सकता था । आपातकालीन स्थित की घोषणा का होना ऐसी स्थिति में बिल्कुल सामयिक ही था । आपातकालीन स्थिति में घोषित अध्यादेशों ने संविधान द्वारा प्रदत्त हमारे मौलिक अधिकारों को कुछ समय के लिये भले ही निलम्बित कर दिया हो, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि उससे अनुशासनहीनता पर तुरन्त रोक लग गयी और देश की तेजी से बिगड़ती हुयी शान्ति व्यवस्था पर जादू का सा प्रभाव पड़ा । सभी कर्मचारी समय पर जाने लगे, ट्रेनें समय से चलने लगीं, हड़तालें बन्द हो गयीं परिणामतः उत्पादन बढ़ा, स्कूल और कालेजों में अध्यापन सही ढंग से प्रारम्भ हो गया, तस्करों चोर बाजारियों और कर वंचकों की गिरफ्तारी और तलाशी से सरकार को करोड़ों के धन की आय हुयी । ये सब उपाय बहुत कुछ अवरोधक एवं नकारात्मक थे । इनके अनुकूल वातावरण बना । इसका पूरा लाभ उठाने के लिए आवश्यक था कि कुछ रचनात्मक एवं भावात्मक कदम उठाए जाएं । अतः हमारी प्रधान मंत्री ने एक न्यूनतम कार्यक्रम राष्ट्र के सम्मुख रखा जिसको पूरा करने से देश को समता, एकता एवं सामाजिक न्याय के लक्ष्य की ओर बहुत कुछ ले जाया जा सकता था । इस कार्य क्रम के बीस सूत्र है जिसका क्रियान्वयन देश के प्रत्येक भाग के सरकारी तथा गैर सरकारी लोगों द्वारा बड़े उत्साह से किया जा रहा है । देश की कोई भी राजनैतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक संस्था हो उसे इससे कोई भी मतभेद नहीं हो सकता । अब हम एक-एक कर इन सूत्रों पर दृष्टि डालेंगे और देखेंगे कि इस सम्बन्ध में क्या अब तक हुआ है ।

१– आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के दामों में गिरावट लाई जाये तथा उसे स्थायी बनाने का प्रयत्न करना । हमने देखा है कि गेहूँ, शक्कर, डालडा, तेल आदि आवश्यक वस्तुओं के मूल्य काफी गिरे हैं और वह गिरावट अभी भी जारी है । अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य निर्धारित कर दिए गए हैं तथा दूकानदारों को सूचित किया गया है कि वे उन वस्तुओं के दामों की सूची अपनी दूकान पर प्रदर्शित करें । उत्पादन कर्ता के लिए भी अनिवार्य है कि वे दाम वस्तुओं के डिब्बों पर अंकित करें ताकि उपभोक्ताओं को पता रहे की अमुक वस्तु का मूल्य क्या है ।

२– आवश्यक उपभोक्ता पदार्थ की वसूली व वितरण व्यवस्था को प्रभावशाली बनाना तथा सरकारी खर्च में कमी करना । इस वर्ष गेहूँ चावल का इतनी प्रभूत मात्रा में उत्पादन हुआ है कि उन्हें रखने के लिये स्थान की कमी अनुभव की जा रही है। अतः सरकारी आदेश हुआ कि आवश्यकता पड़ने पर कालेजों तथा स्कूल ग्रहों के कुछ कमरों को भण्डार गृह बनाया जा सकता है । वितरण व्यवस्था की दृष्टि से अन्तर्जिला अथा अन्तर्प्रदेशीय प्रतिबन्ध हटा दिए गए हैं । पार्सल एवं माल गाड़ियों

में गतिशीलता लाई गयी है। टैरिफ नियमों में परिवर्तन कर ७ दिनों में माल उठा लेना अनिवार्य कर दिया गया है।

३– कृषि भूमि की हदबन्दी को तेजी से लागू करना तथा गाँव की अतिरिक्त भूमि को भूमिहीनों के बीच शीघ्रता से बाँटना। इस कार्य को जिलाधिकारियों द्वारा प्रमुखता दी जा रही है। भूमि आबंटन में भूमि भूमिहीन हरिजनों को दी जा रही है।

४– भूमिहीन तथा समाज के कमजोर वर्गों के लिए आवासीय भूमि के आवेदन के कार्य को तेजी के साथ बढ़ाना।

इस कार्य को भी शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने के आदेश दे दिए गए हैं।

५– मजदूरों से बलात् काम कराने को तुरन्त गैर कानूनी कर दिया गया है। राजस्थान बिहार इत्यादि प्रदेशों में बहुत से ऐसे मजदूर थे जो पीढ़ी दर पीढ़ी महाजनों तथा जमींदारों के कर्जदार थे तथा कर्ज के ब्याज के रूप में मजदूरी करते थे। ऐसे लोगों के लिये कानून बनाकर उन्हें इस दासता से मुक्त कर दिया गया है।

६–छोटे किसानों, भूमिहीन मजदूरों को उनके ऋणों से मुक्त कर दिया गया है। ऐसे कानून बनाए गए हैं जिसके अनुसार ऋण माफ कर दिया गया है तथा गिरवी रखी वस्तुएँ वापस दिलायी गयी हैं। इस प्रकार सूद खोर महाजनों के चंगुल से कमजोर वर्ग के लोगों को छुड़ाकर उन्हें राहत दी गयी है।

७– शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में निम्नतम मजदूरी की दरों का निर्धारण करना। प्रत्येक राज्य ने दोनों क्षेत्रों के मजदूरों की मजदूरी दर निश्चित की है।

८– ५० लाख हेक्टेयर भूमि में अतिरिक्त सिंचाई की की व्यवस्था करना इसके लिए भूमिगत जल का अधिक से अधिक उपयोग करने के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाये जा रहे हैं। पंचवर्षीय योजना में जो लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं उन्हीं में प्रदेशशः प्रगति करने हेतु योजना बनायी गयी है।

९–बिजली उत्पादन में तेजी लाना। केन्द्र के नियंत्रण में बिजली घरों की स्थापना की जा रही है। नये बिजली घर बनाने हेतु योजना बनायी जा रही है। बिजली घर के नियंत्रण उठाकर कारखानों तथा खेतों के लिये अधिक से अधिक बिजली की पूर्ति की जा रही है।

१०– हथकरधा वस्तु उद्योग को प्रोत्साहन देना। इसके लिये स्माल-स्केल इण्डस्ट्रीज विभाग की ओर से इस उद्योग को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

११– नियोजित मूल्य पर बिकने वाले सफेद कपड़े की क्वालिटी को सुधारना और उसके वितरण की उचित व्यवस्था करना।

सूती, शिफान, टेरीकाट, टेरीलीन आदि कपड़ों के मूल्य निर्धारित किये गये हैं जिससे उनके मूल्यों में पर्याप्त कमी आयी है।

१२– शहरी भूमि व शहर बसाने योग्य भूमि का समानीकरण। अतिरिक्त भूमि पर कब्जा करने तथा आवासों में चौकीक्षेत्र को कम करने के सम्बन्ध में कानून बनाये जा रहे हैं।

१३–शहरी सम्पत्ति के मूल्याँकन के लिए विशेष दस्ते की स्थापना कर चोरी करने तथा गलत सूचना देने वालों के विरुद्ध सरकारी तौर पर मुकदमा चला कर कड़ा दण्ड देना।

सरकार ने स्वयं अपना काला धन ३१, दिसम्बर तक घोषित करने वालों के लिए सुविधा देकर कई अरब का धन सरकारी कोष में जमा कराया है तथा उनकी कोठियों पर गुप्त रूप से छापा मारा गया है जिन्होंने अपना धन पूर्ण रूप से घोषित नहीं किया था। इस प्रकार एक हजार करोड़ रुपये पर सरकार ने अधिकार कर लिया है।

१४–तस्करों की सम्पत्ति जब्त करने के लिए विशेष कानून बनाना। बड़े-बड़े तस्कर और उनके सहायक मीसा के अन्तर्गत गिरफ्तार किए गए हैं। जो फरार हो गए हैं उनकी सम्पत्ति सरकार द्वारा जब्त की जा रही है।

१५–पूंजी निवेश को उदार बनाना परन्तु आयात लाइसेन्स का दुरुपयोग करने वालों के साथ कड़ी कार्यवाही करना।

१६–उत्पादन बढ़ाने के लिये उद्योग में कर्मचारियों के योगदान को प्रोत्साहन देना तथा ऐसे कार्यक्रमों को हाथ में लेना जिससे प्रौद्योगिक विवाद न उठे।

आपातकालीन स्थिति में मिल मालिकों और मजदूरों के झगड़े बहुत कम हुए हैं और उत्पादन क्षमता काफी बढ़ी है।

१७–सड़क परिवहन के लिये राष्ट्रीय परिमिट योजना का प्रारम्भ करना। जहाँ निजी बसों की सरकारी बसों से प्रतिद्वन्दिता थी वहाँ उनको बन्द कर दिया गया इस प्रकार उत्तर प्रदेश में एक मास में ही तीन लाख रुपये का लाभ शासन को हुआ।

१८–मध्यम वर्ग के लिये आयकर में राहत देना। आयकर में छूट की सीमा ६०००) से ८०००) कर देने से काफी लोगों को राहत मिली हैं।

१९–छात्रावासों में छात्रों के लिए नियंत्रित मूल्य पर आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था करना तथा उन्हें नियंत्रित मूल्य पर पुस्तकें व स्टेशनरी उपलब्ध कराना।

इसके लिए स्थान-स्थान पर छात्रावासों में सहकारी समितियाँ खोली गयी हैं। पुस्तकों के मूल्य को साधारण बाजार में भी नियंत्रित किया गया है।

२०–नयी एप्रेंटिसशिप योजना को प्रारम्भ करना–इसके अन्तर्गत रोजगार और प्रशिक्षण के अवसर बढ़ेंगे। इसमें समाज के कमजोर वर्गों को वरीयता दी जायेगी। प्रत्येक व्यक्ति अपने हाथ से काम करना सीखे अतः इसमें प्रौद्योगिक शिक्षा को अग्र स्थान दिया जा रहा है।

इस बीस सूत्रीय कार्यक्रम के आधार पर बनी योजनाओं में साधारण जनता बड़ी रुचि से भाग ले रही है। इसके कारण उसमें आत्म-विश्वास का निर्माण भी हो रहा है जो एक युगान्तरकारी सामाजिक परिवर्तन का सूचक है। आइये हम सब इसमें हाथ बटाँये।

वार्षिक – आख्या

इस विद्यालय की स्थापना गुरुपूर्णिमा १८ जुलाई, १९७० को स्वर्गीय पं० दीनदयाल उपाध्याय की स्मृति में इस उद्देश्य से की गई थी कि श्रेष्ठ भारतीय संस्कार देकर बालकों को राष्ट्र के योग्य नागरिक बनाया जाये। यह विद्यालय उन पब्लिक स्कूलों की कमी को पूरा करने का प्रयास है जहाँ पढ़ाई का स्तर तो ऊँचा होता है, पर अध्ययन का माध्यम अंग्रेजी है तथा अंग्रेजी शिष्टाचार एवं रहन–सहन के अनुकरण पर बल दिया जाता है। इस विद्यालय में भारतीय संस्कारों पर बल देते हुये बालक के उचित चारित्रिक एवं सांस्कृतिक विकास को प्रथम वरीयता दी जाती है तथा द्वितीय वरीयता उसकी पढ़ाई के स्तर को। यद्यपि अंग्रेजी का पाठ्यक्रम में अनिवार्य स्थान है, परन्तु अध्ययन अध्यापन का माध्यम मातृभाषा हिन्दी ही है।

जिस भूमि पर यह विद्यालय स्थित है उसके लिये वह ब्रह्मावर्त सनातन धर्म महामण्डल का आभारी है जिसने अत्यन्त उदारतापूर्वक इस भूमि को विद्यालय भवन के निर्माण हेतु प्रदान किया। इस भव्य भवन के निर्माण का पूर्ण श्रेय है स्वर्गीय श्रीमती सुशीला नरेन्द्र-जीत सिंह को जिन्होंने इसका पूरा व्यय वहन कर अपने निरीक्षण में ही इसको बनवाकर विद्यालय की प्रबन्ध समिति को हस्तान्तरित किया और इस प्रकार अपने अप्रतिम विद्या प्रेम का परिचय दिया।

यह विद्यालय कक्षा ६ से प्रारम्भ होकर पिछले ६ वर्षों में प्रगति करता हुआ आज पूर्ण विकसित वैज्ञानिक वर्ग में मान्यता प्राप्त हाई स्कूल के रूप में कार्य कर रहा है। प्रत्येक कक्षा में २ अनुभाग हैं और इस प्रकार विद्यालय के १० अनुभागों में छात्रों की संख्या ३८६ है। इस विद्यालय को शासन के द्वारा एक विशिष्ट विद्यालय के रूप में कुछ विशेषताओं के आधार पर ही मान्यता दी गई थी जिनमें प्रत्येक छात्र पर व्यक्तिगत ध्यान प्रमुख है। इसी कारण हम कक्षा में निर्धारित संख्या से अधिक छात्र प्रविष्ट नहीं करते।

गत वर्ष १९७५ की हाई स्कूल परीक्षा में हमारा प्रथम ३० छात्रों का दल सम्मिलित हुआ था। इनका परीक्षाफल शतप्रतिशत तो था ही। विशेषता यह थी कि कोई भी तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण नहीं हुआ। १७ प्रथम श्रेणी में, शेष १३ द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। ४ ससम्मान उत्तीर्ण हुए अर्थात् उनको ७५% या उससे अधिक अंक प्राप्त हुए। एक छात्र का पूरे प्रदेश में नौवां स्थान था।

विद्यालय में पढ़ाने वाले आचार्यों की संख्या प्रधानाचार्य को मिलाकर १८ है। कलाध्यापक को छोड़कर हमारे सभी आचार्य स्नातक अथवा परास्नातक (graduates or post graduates) हैं। स्नातक अथवा परास्नातकों में भी दो परास्नातकों को छोड़कर सभी प्रशिक्षित हैं। इस प्रकार जूनियर हाई स्कूल कक्षाओं को भी पढ़ाने वाले अध्यापक स्नातक अथवा परास्नातक ही हैं।

शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित विषयों के अतिरिक्त छात्रों को उनकी विशेष अभिरुचियों के रूप में संगीत, चित्रकला, बागवानी आदि का अभ्यास कराया जाता है। साधारण विषयों का स्तर ऊंचा रखने के उद्देश्य से हमने कक्षा अष्टम तक केन्द्रीय विद्यालयों के समान राष्ट्रीय शिक्षा एवं अनुसंधान परिषद (एन०सी०ई०आर०टी०)

द्वारा तैयार की हुई पाठ्य पुस्तकों को विद्यालय के पाठ्यक्रम में रखा है।

अनुशासन की दृष्टि से सभी बच्चों को एक निर्धारित वेश में ही विद्यालय आना पड़ता है जिसमें ऋतु के साथ परिवर्तन कर दिया जाता है।

पाठ्यक्रमेतर क्रिया कलाप भी शिक्षा के महत्वपूर्ण अंग हैं, ऐसा मानते हुए और बच्चों में उत्तरदायित्व एवं प्रजातान्त्रिक भावना के विकास के महत्व को दृष्टि में रखते हुए बच्चों की स्वशासित दो संस्थायें बाल भारती (कक्षा ८ तक के छात्रों के लिए) एवं किशोर भारती (कक्षा ८ से ऊपर की कक्षाओं के लिये) गठित की गई हैं। उनके तत्वावधान में प्रति शनिवार को बारी बारी से विभिन्न कार्यक्रम जैसे वाद-विवाद, अन्त्थाक्षरी, काव्यपाठ, सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता, निबन्ध प्रतियोगिता, कहानी प्रतियोगिता, महापुरुषों की जयन्तियाँ आदि आयोजित किये जाते हैं। एक 'नीराजन' नामक वार्षिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है जो बच्चों की रचनात्मक साहित्यिक प्रतिभा के विकास में सहायक होती है।

विद्यालय के छात्रों के स्वास्थ्य और शारीरिक विकास की दृष्टि से उन्हें नियमित व्यायाम, शारीरिक समता (पी० टी०) और योगासन कराये जाते हैं और साथ ही सन्ध्या को प्रतिदिन सभी प्रकार के भारतीय एवं पाश्चात्य खेल जैसे कबड्डी, खो, फुटबाल, हाकी, बैडमिन्टन, वालीबाल, क्रिकेट आदि खिलाए जाते हैं। उनके स्वास्थ्य की परीक्षा भी वर्ष में कम से कम दो बार एक चिकित्सक के द्वारा की जाती है।

विद्यालय भवन के ऊपरी खण्ड में छात्रावास भी है जिसमें आजकल ८२ छात्र हैं जिनकी देख-रेख एक मुख्य अधीक्षक तथा तीन सहायक अधीक्षक करते हैं। ये लोग विद्यालय के आचार्य मण्डल के ही सदस्य हैं तथा छात्रावास में ही रहकर बच्चों के अनुशासन, स्वास्थ्य, भोजन, पढ़ाई, व्यायाम आदि की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी हैं। आवासीय बच्चों में १९ स्थानीय हैं। शेष ६३ बाहर के हैं जिनमें दो पंजाब के, एक अरुणाचल का, तीन बिहार के तथा शेष उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों के हैं।

विद्यालय भवन के ठीक पीछे विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म महाविद्यालय का तरण सरोवर है जिसका उपयोग हमारे छात्र भी समय समय पर करते हैं। पानी की कमी के कारण उसका लाभ अधिक नहीं उठाया जा रहा है। यदि विद्यालय का अपना नलकूप हो तो यह कमी दूर हो सकती है तथा उसके और भी उपयोग हो सकते हैं।

विद्यालय का पुस्तकालय एवं वाचनालय विकासशील है। उसमें लगभग ६०००/- के मूल्य की लगभग २००० पुस्तकें हैं। दो दैनिक, ६ साप्ताहिक, २ पाक्षिक तथा १२ मासिक आते हैं। प्रतिदिन के मुख्य समाचार भी एक निर्धारित दीवाल पटल पर लिख दिये जाते हैं।

पाठ्य तथा सहपाठ्य विषयों के अतिरिक्त विद्यालय की समय सारिणी में प्रतिदिन नैतिक शिक्षा अथवा सदाचार का प्रावधान है। प्रतिदिन प्रार्थना के पश्चात नियमित पढ़ाई प्रारम्भ होने के पूर्व कक्षाचार्य नियमि रूप से कुछ समय बच्चों को सामान्य शिष्टाचार अथव किसी नैतिक गुण अथवा किसी महापुरुष के जीवन के कोई प्रेरक प्रसंग बताते हैं। साथ ही रामायण, गीता के कुछ पूर्व निर्धारित अंश बच्चों को कण्ठस्थ कराते हैं। अन्य विषयों की परीक्षा के साथ नैतिक शिक्षा की भी परीक्षा होती है। बच्चों के नैतिक विकास की दृष्टि से प्रत्येक मंगलवार को रामचरित मानस पर प्रवचन होता है। इसके लिए हम पं० हरिशंकर शर्मा, अवकाश प्राप्त अतिरिक्त शिक्षा निदेशक के अत्यन्त आभारी हैं जो लगभग प्रत्येक मंगलवार को अपना अमूल्य समय देकर हमारे छात्रों पर अच्छे संस्कार डालने में हमारी सहायता करते हैं।

प्रतिवर्ष हमारे बच्चे दशहरे की छुट्टी में देश-दर्शन के लिए यात्रा करते हैं जिससे न केवल उन्हें देश के उस

विशेष भाग की कुछ व्यवहारिक जानकारी होती है वरन उनके सामान्य ज्ञान में भी वृद्धि होती है। वास्तव में देश-भ्रमण स्वयं में ही एक शिक्षा है। गत वर्ष ६२ छात्रों एवं कुछ आचार्यों का दल बस द्वारा चित्रकूट, प्रयाग, काशी, सारनाथ, गया, नालन्दा, पटना होते हुए काठ-माण्डू गया था और गोरखपुर, अयोध्या, लखनऊ होते हुए वापस लौटा था। परन्तु इस वर्ष देश की असाधारण स्थिति होने के कारण देशभ्रमण का कार्यक्रम स्थगित कर देना पड़ा।

बोर्ड की परीक्षा के अतिरिक्त शिक्षा विभाग द्वारा संचालित एकीकृत छात्रवृत्ति परीक्षा में भी जिसमें कक्षा ८ के बच्चे बैठते हैं पिछले वर्ष हमारे दो छात्र छात्रवृत्ति पाने के अधिकारी घोषित हुए। श्री ब्रह्मावर्त सनातन धर्म महामण्डल द्वारा संचालित मानस प्रवेश परीक्षा में तथा श्रीराम कृष्ण परमहंस जयन्ती के अवसर पर होने वाली भाषाण तथा निबन्ध प्रतियोगिताओं में भी हमारे छात्र प्रतिवर्ष कुछ न कुछ स्थान प्राप्त कर पुरस्कृत होते रहते हैं।

हमारे छात्रों के अभिभावकों की बड़ी इच्छा थी कि विद्यालय में इण्टरमीडिएट कक्षाएं भी प्रारम्भ की जायें, क्योंकि उनके अनुसार उनके बच्चों को जैसा वातावरण यहाँ मिलता है वैसा कक्षा १० के पश्चात् अन्य स्थान पर मिलना कठिन ही है। इसलिये हमने इण्टरमीडिएट प्रारम्भ करने के लिये आवेदन पत्र तो दे रखा है परन्तु जब तक छात्रावास के लिये विद्यालय भवन से अलग व्यवस्था नहीं होती तब तक इण्टर कक्षा के लिये अतिरिक्त कमरे उपलब्ध नहीं होंगे। अतः हमारी दूसरी बड़ी आवश्यकता एक अलग छात्रावास-भवन की है जिसकी पूर्ति कानपुर जैसी व्यवसायी महानगरी के धनी मानी सज्जनों के लिए कोई कठिन नहीं है।

छात्र, जो इस वर्ष दशम कक्षा की परीक्षा दे रहे हैं।

अनुक्रमाङ्क	परीक्षार्थी का नाम	अनुक्रमांक	परीक्षार्थी का नाम
४९५४२३	अजय कुमार गोयल	४९५४५६	रजनीश टंडन
२४	अजय कुमार सिंह	५७	रजनीश जैन
२५	अनुपम मिश्र	५८	रमन कुमार कपूर
२६	अरविन्द कुमार गुप्त	५९	रमा कान्त शुक्ल
२७	अरुण कुमार सिंह	६०	रमेश कुमार गेरा
२८	अश्विनी सेठ	६१	राधा मोहन शुक्ल
२९	अतुल श्रीवास्तव	६२	राजीव अग्रवाल
३०	अनिल अग्रवाल	६३	राजीव त्रिवेदी
३१	आलोक कुमार	६४	राजेन्द्र कुमार मिश्र
३२	ओम प्रकाश	६५	राजेन्द्र कुमार सिंह
३३	कृष्ण चन्द्र भार्गव	६६	विनीत कुमार देवरा
३५	गोपाल कृष्णन्	६७	विनोद कुमार अग्रवाल
३६	गोपाल टंडन	६९	शैलेन्द्र अग्रवाल
३७	जगदीश लाल गेरा	७०	शैलेन्द्र कुमार दीक्षित
३८	जितेन्द्र कुमार अस्थाना	७१	सतनाम सिंह
३९	दिवाकर त्रिपाठी	७२	सतीश कुमार अग्निहोत्री
४०	दुर्गेश माधव अवस्थी	७३	सत्य प्रकाश
४१	दिनेश अरोड़ा	७४	सत्येन्द्र कुमार सक्सेना
४२	दीपक	७५	सत्येन्द्र भूषण विद्यार्थी
४३	नरेश कुमार	७६	सत्येन्द्र सिंह
४४	नवीन प्रकाश उपाध्याय	७७	सुनील कुमार गुप्त
४५	नीलेन्द्र कुमार मिश्र	७८	सुनील कुमार गोयल
४६	प्रकाश शर्मा	७९	सुनील कुमार जैन
४७	प्रतिपाल सिंह	८०	सुरेन्द्र पाल चावला
४८	प्रदीप कुमार सिंह	८१	सुशील नौटियार
४९	प्रदीप गुप्त	८२	संजय कुमार सिंह
५०	प्रफुल्ल गुप्त	८३	संजय गोयल
५१	भूपेन्द्र कुमार मिश्र	८४	हरीकान्त मिश्र
५२	मुकेश कटियार	८५	हरीन्द्र त्रिपाठी
५३	मुकेश मिश्र	८६	हरिश्चंद्र शुक्ल
५४	योगेन्द्र कुमार अरोड़ा	८७	हर्ष कुमार शुक्ल
४९५४५५	योगेश साहनी	४९५४८८	राजेश मल्होत्रा

जब सरकार ने हमें आमंत्रित किया.......

ओम शंकर (आचार्य)

इस वर्ष उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा प्रतिभाशाली छात्रों के प्रोत्साहन-हेतु जो आयोजन प्रदेश की राजधानी में किया गया, कदाचित् पहला ही था। जिसकी भी सूझ रही हो, वास्तव में सराहनीय थी।

अपने विद्यालय के चिरंजीव शशि शर्मा के प्रदेश में नवम स्थान प्राप्त करने के कारण मुझे भी उस अवसर पर आमंत्रित व्यक्ति के नाते रहने-देखने का अवसर मिला। इस आयोजन को शब्दों में रूपायित करके कदाचित् उसी कल्पना को कुछ सीमा तक रूप प्रदान करने का प्रयास करूँगा, जिसे प्रदेश के शिक्षा निदेशक श्रीमान् डा० श्याम नारायण मेहरोत्रा ने इसे 'बाल–दिवस' पर आयोजित करके करने की इच्छा प्रकट की थी। उन्होंने कहा था कि इस आयोजन को यदि खुले रूप में किया जाये तो कदाचित् अधिक मात्रा में विद्यार्थी लाभान्वित हो सकेंगे।

विद्यालय में प्राप्त सूचनानुसार मुझे और मेरे छात्र चि० शशि शर्मा को दिनाँक ३ मार्च, १९७६ को पूर्वाह्न 'टूरिस्ट बंगला' सर तेग बहादुर सप्रू मार्ग, लखनऊ, पहुँचना था। यह सोचकर कि सभी अग्रिम कार्यक्रम तथा सूचनाएँ वहां पहुँचकर मिल जाएँगी, हम लोग संकेतिक स्थान पर पहुँच गये। आवास–भोजन तथा जलपान की व्यवस्था वास्तव में सराहनीय थी। नियुक्त किये गये प्रमुख आतिथेय श्री हुसैन साहब वास्तव में मेहमानबाजी में माहिर थे; किंतु कदाचित् प्रथम बार का कार्य-क्रम होने के कारण कुछ ऐसा लगता था कि पूर्व नियोजित पूरे तीन दिन का व्यवस्थित कार्यक्रम नहीं है, जिसे थोड़ा बहुत सबने स्वीकारा। हुसैनी साहब भी केवल इतना ही बता सके कि 'आप लोग, साहब आराम फरमाइये। कल सुबह (४-३-७६) को 'Site Scene' के लिये चलना है। फिर भोजन और ३-३० पर यहां से 'पुरस्कार' आदि के लिये विधान सभा भवन के तिलकहाल में चलेंगे।'

इसके बाद के ४-३-७६ की संध्या तथा ५-३-७६ के दिन भर के बारे में वे बेचारे स्वयं अनभिज्ञ थे और शायद इस संबंध में सभी अनभिज्ञ ही थे। इसीलिये हमलोगों ने अनुमानतः यह विचार कर लिया कि लखनऊ भ्रमण तथा पुरस्कार–वितरण का आयोजन है, जिसमें केवल द्वितीय का ही समय और स्थान नियत है। दोष कुछ यों ही चल रहा है।

खैर.........................

तिलक हाल की व्यवस्था सर्वथा उपयुक्त थी। गोलाकार आसंदियों पर पहले सम्मानित छात्र, उनके पीछे उनके अध्यापक तथा सबसे पीछे अभिभावक एवं अन्य आमंत्रित सज्जन बैठे थे। सामने मंच पर प्रदेश के शिक्षा मंत्री महोदय, सचिव तथा शिक्षा निदेशक एवं अन्य कुछ गण्य मान्य व्यक्ति थे। मंच और छात्रों के बीच चल वैजयन्तियों की चंचल जगमगाहट से पूरा कक्ष उस समय और चमक उठा जब प्रेस के साथ निजी कैमरामैन भी 'क्लिक–क्लिक' करने लगे।

सर्व प्रथम शिक्षा निदेशक महोदय ने प्रत्येक छात्र एवं संबंधित शिक्षक को प्रमाण–पत्र–धनराशि रु० ३०५/– (विद्यार्थी को), वैजयन्ती प्रमाण पत्र (विद्यालय को) प्रदान किये तथा संक्षिप्त भाषण दिया। अंत में काल्विन्स कालेज के प्राचार्य महोदय ने समापन भाषण पढ़ा। ठीक नियत समय पर जलपान आदि समाप्त करके हम लोग पुनः अपने आवास पर आ गये।

वहाँ से लगभग सभी आमंत्रित लोग चलने की तैयारी करने लगे। ५–३–७६ के दिन की चिंता सभी ने शायद छोड़ दी थी।

मेरे जैसे कतिपय व्यक्ति अपने–अपने अनुभव और सुझाव देने को ललकते रहे। विद्यार्थी केवल अपनी-अपनी स्वेच्छा से इधर-उधर की बातें करते रहे और कार्य–क्रम समाप्त हो गया। इंटर तथा हाईस्कूल के उन तीस बच्चों को देखकर तथा मिलकर यह अवश्य लगा कि वास्तव में ये वास्तविक प्रतिभायें हैं, केवल इन्हें दिशा निर्देशन और इसी प्रकार के प्रोत्साहन कार्यक्रम चाहिए। उनमें बृहत् दृष्टिकोण एवं लक्ष्य का अभाव अवश्य खटक रहा था, जिसका सारा उत्तरदायित्व हमारे जैसे अध्यापकों पर है। वे तो बेचारे समर्पित सुगंधि–संपन्न सर्वोत्तम सुमन हैं। उनकी सुरभि का प्रसार तो हमारी समीर-चालन-क्षमता पर ही है।

सभी को चल वैजयंतियाँ मिली हैं। अपने संबंध में केवल इतना ही कहना है कि परिस्थितियों के झंझा भी कदाचित् हमारी विजय को न रोक पायें और यह चल वैजयन्ती अगले वर्ष अपना युगल बना ले। अस्तु !

विद्यालय के सम्बन्ध में........

आज अपराह्न मुझे पं० दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय में आकर यहां की गतिविधि को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। भारत में प्रारम्भिक शिक्षा का जो आदर्श रूप हो सकता है, उसका जीता–जागता उदाहरण यह विद्यालय है।

भारतीय संस्कृति की नींव बचपन में हो बालकों के जीवन में पड़ जानी चाहिए। इस विद्यालय में यह कार्य सफलता-पूर्वक सम्पन्न हो रहा है। इसके लिए विद्यालय के अधिकारी बधाई के पात्र हैं।

मुझे आशा है कि इस विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके जीवन में प्रवेश करने वाले छात्र भारतीयता और भारतीय संस्कृति के ध्वज-वाहक बनेंगे।

वाराणसो

२७–१–७६

डा० शम्भुनाथ सिंह
निदेशक
तुलसी पीठ
काशी–विद्यापीठ

वार्षिकोत्सव के अवसर पर हमारे अतिथि

प्रार्थना में भाग लेते हुये बायें प्राचार्य श्री चन्द्रपाल सिंह, मध्य में
श्री रामबालक जी मिश्र, एडवोकेट, दाहिने श्रीमती महेन्द्रजीत सिंह

वार्षिक पुरस्कार वितरण समारोह पर

विद्यालय का होनहार छात्र चि० शशि शर्मा
श्रीमती महेन्द्रजीत सिंह से पुरस्कार प्राप्त करते हुये।

विद्यया विन्दतेऽमृतम्

संस्कृत - विभागः

सम्पादक : **राजकुमार दीक्षित**
साहित्याचार्य, एम०ए०, बी०एड

छात्र सम्पादक : हरीकांत मिश्र, दशम (क)
अरविन्द तिवारी, अष्टम (क)

अनुक्रमणिकाः

क्रमांकाः	शीर्षकाः	लेखकाः	पृष्ठाः
१.	मंगलाचरणं	संकलित	२
२.	राष्ट्रियैकता संस्कृतम् च	श्री राजकुमार दीक्षित	३
३.	राम चरित मानसस्य महत्त्वम्	हरीकान्त मिश्र, (दशम 'क')	५
४.	अतीतस्य गुरू शिष्यो परंपरा	अरविन्द तिवारी (अष्टम 'क')	६
५.	अमर शहीद चन्द्र शेखरः	ओउम् प्रकाश (दशम 'क')	७
६.	महात्मा गांधी	वीरेन्द्र सिंह (सप्तम 'क')	८
७.	सुभाषित श्लोक संग्रहः	दीपक खन्ना (सप्तम 'क')	९
८.	वाक चातुर्यम्	रामकृष्ण शुक्ल (सप्तम 'क')	१०
९.	सुवर्ण हंस कथा	राजीव गुप्त (सप्तम 'क')	१०

मङ्गलाचरणम्

ओऽम् नमो भगवते तस्मै यस्मादिदं सर्वमजायत । यस्य
देवा ऋषयो वा पदे न विदुः । स माम् अवतु ।
यस्य सुमङ्गलं पदं दिदृक्षवो विमुक्त संगा
मुनयो वने व्रतं चरन्ति । यस्य जन्म
कर्म नाम रूपे गुण दोषौ च न
विद्यते । स मे गतिः । विश्व-
सृजं भूरिकारुण्यमजं
परमेश्वरं प्रणमामि ।

(वेद)

(१)

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय,
लम्बोधराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुति यज्ञ विभूषिताय,
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ।।

(संकलित)

(२)

शशिखण्डमौलि, स शिखण्डमौलि वा,
सितमेघचारु, शितिमेघचारु वा ।
उमया विलासि, रमया विलासि वा,
मम किञ्चिदस्तु हृदिवस्तुसन्ततम् ।।

(प्राकृतसर्वस्य)

(३)

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितम् येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

(संकलित)

राष्ट्रयैकता संस्कृतम् च

राजकुमार दीक्षित (आचार्य), साहित्याचार्य एम ए०, बी०एड०

विश्वास्मिन् सर्वत्र मानवोऽहर्निम् प्रतिक्षणञ्च सुख समृद्धि कामनायै तत्परो दृश्यते। यद्यपि शास्त्रेषु तत्साधनीभूताः बहवः प्रकाराः महर्षिभिर्कथिताः वर्तन्ते। परञ्च अल्पेनैव क्षणेन सरलतया यथा धर्मार्थकाममोक्ष रूप चतुर्विध पुरुषार्थस्य सिद्धिर्भवतु तथा तत्कृते भारतीयायाः संस्कृतेः मानवानां कृते परिपालनाय नियमोप नियमाः निर्दिष्टाः। एतेषामवज्ञैया सर्वत्र भ्रष्टाचारो ऽशान्तिर्व्याकुलता च दृश्यन्ते। परमपावनेऽप्यस्मिन भारतवर्षे वर्तमान राजनैतिक परिस्थितिषु ऐक्याभावात् संपूर्णास्वपि मानव जातिषु विश्रृंखलतया विघटन भावनैव लक्ष्यते। अस्यां परिस्थितौ किं कारणम ? को हेतुः ? इति विचार्यमाणे सति संस्कृत भाषा माध्ये येन वर्णितानां शास्त्र नियमानां उपेक्षैव हेतुतामपतति।

प्राचीन काले ये विद्याभिलाषुकाः ब्रह्मचार्यव्रतिनः छात्राः आसन् ते शास्त्र निर्दिष्टनियमानां पालनं अवश्यमेव कुर्वन्तिस्म। ते बाल्यादेव गुरुकुलेषु स्थित्वा शुश्रूषा पूर्वकं गुरुणामनुशासनं नतेन मूर्ध्ना पालयन्ति स्म। अन्ते शास्त्रेषु पारंगताः सन्तः गुरुणामाज्ञयैव गृहस्थ जीवनं पालयन्तिस्म। ऐहिकीं सुख समृद्धि प्राप्नुवन्तिस्माच। किन्तु आधुनिकाः छात्राः का नाम गुरूणामाज्ञा किं च तस्याः पालनम् इत्यजानन्तः व्यभिचारवृत्या स्वेच्छया इतस्ततो हटिकेषु विचरन्तः नग्न चलचित्र प्रदर्शने स्कीयं अमूल्यं समयं नश्यन्ति। अतः कथं नाम राष्ट्र एकता भवेत्, यतो हि विद्यार्थिन एव राष्ट्रस्य प्राणभूताः तेषां शिक्षयैव राष्ट्रियैक्यं हितं च भवितुमर्हति। अस्मात् कारणात् यथा प्राचीनानां छात्राणां कृते निम्नलिखिताः नियमाः आदेशाः निर्दिष्टाः तथेव नवीनां कृतेऽपि यथा––

"सहनौ अवतु, सहनौ भुवक्तु, सहवीर्य करवावहै तेजस्विनाबधीतमस्तु मा विद्विषावहै"

यस्मिन राष्ट्रे प्राणभूतायाः शिक्षायाः अनुशासनादयः गुणाः न अनुपात्यन्ते; तस्मिन् केन कारणेन ऐक्यभावना जागरिता भवेत् ?

ऐक्यप्रतिपादनार्थन्तु वेदोपनिषद पुराणधर्मशास्त्र प्रभृतीनां धर्मग्रन्थानाम् ज्ञानं प्राथम्येन अनुसरणीयम्। सम्प्रति देशे सर्वकारेण परिवार नियोजन विषये गर्भ निरोधाय कृत्रिमोपाय भूतानि साधनानि सञ्चालितानि परं, नैषां प्रकृतिविरुद्धा भ्रूणहत्या प्रभृति महत्पातकोपजनिका व्यावस्था राष्ट्रकृते श्रेयसी। प्राचीनैतिक्यावलोकनेन स्पष्टं प्रतीयते यद्वशीकृतेन्डिया धृतराष्ट्र सगरादया उदाहरभूता अनेके महापुरुषा आसन्। येषां शत सहस्र संख्य परिमिताः सन्ततयः अभूवन्। किन्तेषां कृते परिवार परिवारनियोजनस्य आवश्यकता नासीत्। किन्तु सर्वज्ञा अपिते ऋषि विरचितानां शास्त्राणां प्राकृतिक नियमाना मनुपालनं एव अकुर्वन।

अस्माकं तत्वविदां महर्षीणामनुभूति प्रवणता त्रिकालज्ञत्वं स्पष्टयति। यतो हि प्रचुरेषु मन्त्रेषु मानवानां हितकारिणो भावाः अभिव्यक्ताः। वैदिके गायत्री मन्त्रे "धियो यो नः प्रचोदयात्" इत्यत्र 'न.' शब्दस्य प्रयोगः लोकोपकारकैव यतः सन्मार्गे प्रवर्तिता बुद्धिरेव मानवान् हितेषु वित्रियुङ्क्ते। आर्य संस्कृतेः स्तम्भभूतेषु वेदेषु प्रतिपादितं वर्तते यत् सर्वे प्राणिन एकस्यैव परब्रह्मः सन्ततयः। यतोहि––

"ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किञ्चित जगत्यांजगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनाम् ।।

अतः समये समये अस्माकं शास्त्रेषु कल्याणस्यैव चर्चा विद्यते—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ।।

किमेभिः पवित्रवचोभिः ऐक्यभावना न व्यज्यते ? एतेषामनुसरणेनाद्यापि पुनर्मानव जातिः स्वोन्नति कर्तु समर्था अस्ति । आधुनिक समाजापेक्षया प्राचीनभारतीय समाजस्य परिस्थितिः पूर्णरूपेण स्पृहणीया सदाचार सम्पन्ना च आसीत् । अस्मादेव कारणात् तत्कालिकं राष्ट्रजीवनं ऐक्ययुक्तमासीत् । केसचित विदुषोक्तम्—

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ।।"

उक्तिरियं चारित्र्यमेव शिक्षयति । एतदेव कारणं यच्चरित्रानुशासन ज्ञान तपश्चर्या प्रभृतिभिर्बलैः बसुन्धरेयम् पाश्चात्यानां कृतेऽनुकरणीया ।

अतोऽस्माकं परमं कर्तव्यं यदस्याः भारतबसुन्धरायाः गौरववर्धनाय संस्कृतेः प्राणभूतानां स्वशास्त्राणां अध्ययनाध्यापनं वा अनुदिनं भवेत् । येन राष्ट्रियैकता पुनरपि संरक्षित संवर्धमाना च भवेत् । संस्कृत ज्ञानं विना सर्वथा वयं राष्ट्र ऐक्य संपादनेऽसमर्थाः । अतः स्वष्टमिदं यत् वर्तमान राजनीतिक परिस्थितिषु राष्ट्रियैक संपादनार्थं संस्कृतस्याध्ययनं ज्ञानं च परमावश्यकम् । अनयैव राष्ट्रे वास्तविक रूपेणैकता भवितुं शक्नोति ।

रामचरित मानसस्य महत्वम्

हरि कान्त मिश्र, दशम 'क'

यदा संसारः कुमार्गगामी, पथभ्रष्टः भवति तदा एव कश्चित् महान आत्मा विभूतिः अस्याम् धरायाम् अवतरितं भवति, यः स्व-महता योगदानेन विश्वाय एकं नवीन–प्रकाशं ददाति। एवं विध, विभूतिः लोकनायकः महाकविः तुलसीदासः आसीत्। सः विपुल–ग्रंथान् अरचयत्। रामचरितमानसम् तस्य अलौकिका कृतिः अस्ति। अनेन माध्यमेन सः संतप्त भारताय नव-ज्योत्स्नाँ प्रसार्य शीतलताम् प्रदत्तवान् पथभ्रष्टं पददलितं च समाजं आलोकितं अकरोत्। सः स्व-ग्रंथेषु 'काव्यं यशसे अर्थकृते शिवेतरक्षतये' अस्य ध्यानं पगे-पगे अधारयत्। एताषाम् विशेषतानाम् कारणेन सः समस्त उत्तर-भारतस्य जनतायाः कण्ठस्य 'हार' इव शोभते।

रामचरितमानसम् हिन्दी भाषायाः सर्वश्रेष्ठं महाकाव्यम् अस्ति। संभवतः संस्कृतस्य अतिरिक्तं अन्यं भाषायां अपि तस्य प्रतिकार–कर्ता–ग्रंथस्य प्राप्तिः असंभवा अस्ति। स्व-इष्टदेवस्य रामस्य चरित्र आश्रित्य महाकविः तुलसीदासः अस्मिन् महाकाव्ये भारतीय संस्कृतिः, आचार-विचारः जगजीवनस्य भव्य-विशाल-महलं स्थापितं अकरोत्। मधुर भाषया, मनोरम-शैल्या च अनेन सुसज्जितम् अकरोत्। धार्मिक दृष्ट्या इदं हिंदूनाम् पंचमोवेदः अस्ति। अद्यापि अगणित हिन्दू-भक्ता मनसा अस्य पाठं प्रतिदिनं कुर्वन्ति। रासचरितमानसस्य पाठेन तस्य सद्गुणानाम् अनुकरणेन ब्रह्मणः प्राप्तिः भवितुं शक्यते। एषा तेषाम् धारणा अस्ति।

अस्याः अमूल्य-काव्य- मणेः निर्माणम् संवत् १६३० तमे विक्रम शताद्बौ काशी नगर्याम् गंगायाः सुरम्ये अभवत्। इदम् निर्माण-कार्यं-लीणि-वर्षेषु समाप्तम् अभवत्। अधुना रामचरितमानसस्य चत्वारिंशत् वर्षाणि समाप्तानि। मानसस्य एषा चतुः शती सर्व-काव्य-रसिकेभ्यः, धार्मिक-जनेभ्यः च हर्षस्य विषयः अस्ति।

रामचरितमानसं एकं सुविख्यातं ग्रंथं अस्ति। अनेन जनाः स्व-धर्मस्य शिक्षाप्राप्नुवन्ति। मानस्य अखण्ड पाठं न केवलं भारतवर्षे वरन् अन्य देशेषु अपि भवति। मानसस्य अनेके महोत्सवाः अद्य भारतवर्षे लोकैः कुर्वन्ते। परन्तु मानसस्य वस्तुतः महोत्सवः तदा संपन्नः भविष्यति यदा प्रत्येक–भारतवासिनः अस्य महाकाव्यस्य अनुसरणं स्व-जीवने करिष्यन्ति, तस्य आदर्शान् साकारं करिष्यन्ति। धन्यः अस्ति तुलसीदासः तस्य रामचरितमानसं च।

अतीतस्य गुरु शिष्यो परंपरा

अरविंद तिवारी, अष्टम 'क'

अनन्तकालाद् अस्माकं देशे गुरु शिष्य प्रणाली अनवरतं अवधिगत्या प्रचलिता दृश्यते। गुरुदेव शिष्यस्य पथ प्रदर्शको भवति। पितरौ तु केवलं जन्मदायको: भवत:। आध्यात्मिकाधि भौतिकाधिदैविक तापत्रयात् मुक्तिस्तु ब्रह्माज्ञाने नैवाव लोक्यते। एभ्यस्तापयेभ्य: सर्वे मुक्तिं कामयन्ते। यथा सांख्य कारिका या मुक्तम्–

दु: खत्रयाद्याता जिज्ञासा तदपघातके हं तौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्तोऽभावात्।

अत: गुरु श्रेष्ठतमो भवति अस्य स्थानं सर्वोत्कटं धर्माचार्यैः स्वीकृतम्। यथा––

गुरुर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु: गुरूर्देवो महेश्वर:।
गुरु: साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नम:।।

कविकुल कलाधर तुलसीदासेन स्वरामचरित मानसे गुरो रेव वन्दना सर्व प्रथमं विहिता––

बन्दहुँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।।

पुरागुरु शिष्यायोस्नेह संबंध: स्नेह मितौ अवलम्बित आसीत्। गुरु: शिष्यं पुत्रवत् पालयति स्म। तेन सह पुत्रइव व्यवहरतिस्य तस्य भरण पोषण शिक्षादै: व्यस्थामापि करोतिस्म।

शिष्यश्चादि गुरूंमातृ–पितृवत पूजयाञ्चकार। शिष्य गुरोराश्रमु उषित्वैन विद्याध्यनं कारोतिस्य। गुरु शिष्यौ आकाशित्वृत्वा एव अखिलं कार्य अकुरुताम्। आश्रमस्य सर्वकायाणि शिष्या: एव कुर्वन्ति स्म ते सर्वथा गुरूं प्रसादयन्तिस्य। अस्मिन् विषये अनेकानि उदाहरणानि समुपालयन्ते।

आनन्द कंद बृज चन्द्रेनापि सन्दीपनिगुरो: समीपे उषित्व अन्ये छात्रा इव सेवा वृत्ति: स्वीकृता। स स्वयं गुरवे समिधानय नाय सौभाग्यं अगण्यत्। स: निर्धन छात्राणांम् महन्तानि कार्याणि कुर्वन किञ्चिदयिन संकुचतिस्य। सुदामा कृष्णयो: मैत्री एतस्य ज्वलतोदाहरणं विद्यते।

वेदान्तेङ्कौ च प्राचीन गुरू शिष्य परम्पराय: आदर्श प्रतीकौ अस्ताग्। एकलव्येनापि स्वगुरेवदक्षिण हस्ताङ्गुष्ठ: प्रदानेन अतिशय भक्ति: प्रदर्शिता।

एषाऽस्माकं अतीत गुरु शिष्य परम्परा आसीत्। अधुनाऽहुं आधुनिक गुरु शिष्य प्रणाल्या: अल्प शब्देषु वर्णनं करिष्ये। आधुनिकी गुरु शिष्य परम्परा अतीव परिवर्तिता। द्वयोर्मध्ये पाषाणयुता भक्ति: स्थापिता। अद्य न तादृशा: गुरव: न तु तादृशा: शिष्या: एव वर्तन्ते।

अत: अहं छात्र बन्धून निवेदयामि यत् यदि भवन्त: सुखेन्

उषितुमिछन्तु, अज्ञानस्यनाशं, ज्ञानस्य च विकासं इच्छन्ति, समाजे सुयश:, प्रतिष्ठां चेच्छन्ति, संसार सागर मुक्तरितुं इच्छन्ति चेत् तर्हि अतीतस्य कालस्य गुरु शिष्य प्रणालीं दृष्ट्वा गुरुन् प्रति श्रदां, भक्तिभावनां च धृत्वा, सेवां कृत्वा च सम्यक् रूपेण विद्याध्ययनं कृत्वा स्वोन्नति, राष्ट्र देशयोन्नति विधेया।

सर्वेभवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणिपश्न्तु, मा कश्चिद्दु:ख भागभवेत्।।

अमर शहीद चन्द्र शेखरः

ओउम् प्रकाश, दशम

अस्माकं देशे अनेके महापुरुषाः अभ्रवन । ये स्वदेशस्य स्वतंत्रतायै प्रयत्नं मनसा, वाचा, कर्मणा च अकुर्वन । तेषु चन्द्रशेखर–आजादः इति नाम्ना सर्वे परिचितः सन्ति । आजादः भारत–मातरम् आँग्लशासकै परतन्त्रं दृष्टुम न अशक्नोत । सः प्रतिज्ञां अकरोत् यत "अहं आजादः अस्मि, आजाद रूपेण स्थास्यामि ।" सः जीवन पर्यन्त अस्य पालनं अकरोत् । सः जीवनपर्यन्तं अस्य पालनं अकरोत् अस्य जन्म संवत १९६४ तमे वर्षे पौष सुदी चतुर्थे दिने मंगलवारे शुक्ल पक्षे बदरका इति ग्रामे अभवत् । आजादः बाल्यकालात् एव निर्भीकः आसीत । अस्य विषये एकाघटना वर्तते यत् ।

एकदा बदरका ग्रामे प्रसादस्य समीपे वृद्ध 'मन्ना पासी' एकः दरोगा महोदयः ताडयतिस्म । बालकः चन्द्रशेखरः तस्य करुण ध्वनिं पाठ्शालयाम् अश्रृणोत् । सः अध्यापकस्य अनुमतिं अप्राप्य अपि तत्र अगच्छत् यत्र दरोगा–महोदयः वृद्धं अकारणेन ताडयतिस्म । चन्द्रशेखरः शार्दूलवत् दरोगा–महोदयस्य दण्डं गृहीत्वा अकथयत्, "मा मैवम्" । अभूतपूर्व–दृश्यमासीत् । सर्वे अध्यापकाः कंपिताः आसन् । दरोगा–महोदया चन्द्रशेखरं दृष्टुम् तल्लीनः आसीत् । चन्द्रशेखरस्य मित्राणि स्व हस्तेषु पाषाण–खण्डानि गृहीत्वा अचिन्तयन् यत् यदा दरोगा–महोदयः चन्द्रशेखरं ताडयिष्यति, ते अपि दरोगा–महोदयं पाषाण–खण्डैः ताडयिष्यन्ति; किन्तु दरोगा–महोदयः चन्द्रशेखरस्य वीरतां दृष्ट्वा प्रजन्नोऽभवत् । सः अकथयत्, "धन्योस्ति सः ग्रामः यत्र एतादृशाः बालकाः वसन्ति, ये माम् कठोरहृदयं अमोहयन् ।

चन्द्रशेखरस्य जीवनम् अतिकष्टमयं आसीत् । सः एकस्य दलस्य निर्माणं अकरोत् । सः सदैव आंग्लशासकस्य अधिकारिणं अवधत् । तस्य दले भगतसिंहः, सुखदेवः, राजगुरुः, सालिगराम शुक्लः इत्यादयः आसन् । आंग्लशासकाः चन्द्रशेखराय अनेकेषां रूप्यकाणाम् पुरस्कारं अघोषयन् परन्तु कश्चित् आजादं गृहीतुं नाशक्नोत् । अनेके गद्दाराः आजादं प्राप्तुं प्रयत्नं अकुर्वन; किन्तु ते असफलाः अभवन् । आजादः यदा कदा अधिकारिणाम् मोटर-यानं अचालयत् किन्तु ते ज्ञातुं ना पारयन् यत् यं ते गृहीतुं प्रायतन्त स तु तेषां समीपे एवासीत् ।

बाल्यकालस्य एव एका अपरा घटना अस्ति । यदा चन्द्रशेखरः शिशु आसीत् । एकदा सः दीपकस्य लवस्य मध्य स्व हस्तं अर्पयत् । तस्य माता चन्द्रशेखरस्य हस्तं दूरं अकरोत् । तेन पुनर्पुन. बहुशः करणेन कोपं कृतवती तदा तु स्वयं तस्य हस्तं अर्पयत् तथापि बालकः निश्चल-भावेन अतिष्ठत्; किन्तु भयात् माता एव तस्य हस्तं दूरं अकरोत् । अनेन सिध्यति, यत् शिशुकाले एव आजादः वीरः आसीत् ।

आजादस्य कर्मस्थली मुख्यरूपेण कर्णपुरम् एवासीत् । तस्य मित्रम् सालिगराम महोदयः दयानन्द महाविद्यालयस्य समीपे एव आंग्लशासकैः हतः । अन्ते यदा आजादस्य सर्वे सहयोगिनः क्रमशः अम्रियन्त सः चिन्तितः अभवत् । एकदा सः प्रयागस्य अल्फ्रेड उद्याने स्व एकेन सहयोगिना सह अचिन्तयत् । तदा सः अपश्यत् यत् सम्पूर्णं उद्यानं आंग्ल सैनिकैः पूरितम् अस्ति । सः स्व सहयोगिनं गन्तुम् अकथयत् । सः स्व अस्त्रेण अनेकान् उच्चाधिकारिणं अवधत् । यदा तस्य पिस्तौले एका गुलिका अतिष्ठत् । सः तदा आत्मनः बधं अकरोत् । सः जीवन पर्यन्तं स्वतंत्रम् उषित्वा स्व प्रतिज्ञा-पालनं अकरोत् ।

सत्यमुक्तमिदं यत्—

"सर्वं परवशं दुःखं, सर्वं मात्मवशं सुखम् ।"

धन्योस्ति एतादृशः महापुरुषः येन देशहिताय प्राणोत्सर्गः कृतः ।

महात्मा गांधी

वीरेन्द्र सिंह, सप्तम

परोपकारैक धियः स्वसुखाय गतस्पृहाः ।
जगद्धिताय जायन्ते महात्मानो महाव्रता ।।

अस्मिन संसारे बहवः महापुरुषाः जन्मः लब्धवन्तः लभन्ते च । तेषु ये देशस्य उन्नति कुर्वन्ति तेषां यशः संसारे तिष्ठति । यथोक्तम्–

स जातोयेन जातेन याति देशः समुन्नन्ति ।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।।

एवं विधेष्वेव पुरुषेषु महात्मा गाँधिरपि एकः महापुरुष, आसीत् यः स्वदेशस्य हिताय स्व प्राणानापि समर्पितवान् ।

महात्मा गाँधी एकः सदाचार शीलः सत्यनिष्ठः देशभक्तश्च महापुरुषः आसीत् । गाँधी महोदयः वस्तुतः देशभक्तानांशिरोमणिः आसीत । "अहिंसा परमोधर्मः" इति तस्यउद्घोषः आसीत् । तस्य जन्म उनविंश-शताब्दयाः उनसप्ततितमें ईसवीये वर्षे पोर बन्दरे अभवत् । तस्य मातुः नामः पुतलीबाई आसीत् । तस्य पितुः कर्मचन्द गान्धी आसीत् । विद्यार्थी जीवने सः एक वारम् "सत्य हरिश्चन्द्रस्य" नाटकः पश्यति स्म । सः अत्यन्त प्रभावितः अभवत् । तस्य जननी पुतलीबाई परमसुशीला ईशभक्ता च असीत् ।

विद्यालस्य शिक्षासमाप्तेरनन्तरे गान्धी महोदयः आंग्लेदेशे अगच्छत् । तस्य भार्या कस्तूरबा आसीत् । गान्धी महोदयः विधिशिक्षायाः अध्ययनस्य पश्चात् हिन्दुस्थानं प्रत्यागच्छत् । सः बाल्यादेव सत्यस्य अहिंसायाश्च पालनं अकरोत् । "हिंसैव दुर्गते द्वारं" तेनोक्तम्–

हिंसैव दुर्गतेर्द्वारं, हिंसैव दुरितार्णवः ।
हिंसैव नरकं घोरं, हिंसैव गहनं तमः ।।

अहिंसात्मकेन आन्दोलनेन सः देशं परतंत्रता-बन्धनात् स्वतंत्रम् अकारयत् । सः जनैः सह एतादृशं मधुरं समानं च व्यवहारम् अकरोत् यत् सर्वे देशवासिनः तं पितृ तुल्यं भन्यन्तेस्म, तं च "राष्ट्रपिता" इति कथयन्तिस्म ।

'महात्मनांहि विलक्षण मृत्युर्भवति' इति नियमेन, त्रिशंततिथौ जनवरी मासे १९४८ तमे वर्षेसः व्यक्त्वा विमुखोऽभूत् । प्रार्थना स्थले एकेनमूर्खमानवेन तस्य वधः कृतः । भारतदेशे, भारतस्य जना. अति शोकाकुलाः अथवन् ।

रघुपति राघव राजा राम, पतीत पावन सीताराम ।
ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान ।

सुभाषित श्लोक संग्रहः

दीपक खन्ना, (सप्तम क)

(१)

यो रणं शरणं तद्वत, मन्यते भय वर्जितः ।
प्रवासं स्व पुरावासं, स भवे द्राजवल्लभः ।।

अर्थ :—जो निर्भय होकर युद्ध क्षेत्र को घर और प्रवास को अपने आवास के समान मानता है वह राजा का प्रिय होता है ।

(२)

यस्य यस्य हियोभावः तेन तेन समाचरेत् ।
अनुप्रविश्य तु मेधावी, क्षिप्र मात्मवशं न येत् ।।

अर्थ :—जिस जिस व्यक्ति का जो भाव है उसके अनुसार राजा की सेवा करने वाला मेधावी पुरुष राजा के चित्त में प्रवेश कर यथा शीघ्र वशीभूत कर लेता है ।

(३)

गोष्ठिक कर्म नियुक्तः श्रेष्ठी, चिन्तयति चेतसा दृष्टः ।
वसुधा वसु सम्पूर्णा, मया लब्धा कि मन्येन ।।

अर्थ :—गाय बैल आदि पशु धन का व्यापारी प्रसन्न मन से सोचता है कि मैंने धन से सम्पन्न वसुधा ही प्राप्त कर ली तब मुझे क्या चाहिए ?

(४)

सा सेवा या प्रभुहिता, ग्राह्या वाक्य विशेषतः ।
आश्रयेत्पार्थिवं विद्वांसृ, तद्वारेणैव नान्यथा ।।

अर्थ :—स्वामी का हित करने वाली सेवा ही वास्तव में सेवा है । विज्ञजनों के द्वारा राजा का आश्रय प्राप्त करने का यही द्वार है । अन्य कोई उपाय नहीं है ।

(५)

जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी
(राम)

विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एवं धीराः
(भारवि)

सहसा विदधीत न क्रियाम विवेकः परमापदोपदम्,
(भारवि)

वाक् चातुर्यम्

(रामकृष्ण शुक्ला, सप्तम कक्षीय)

एकदा कश्चित् नृपः कमपि वृद्धं मरणासन्नं गजं प्रेषयति स्म । ग्रामाय संदेशं च प्राहिणोत् यत् प्रतिदिनं अस्य गजस्य वार्ता मह्यं निवेदनीया । यः कोऽपि ग्रामवासी 'हस्तीमृतः' इति मह्यं निवेदयिष्यति सः सत्वरम् बधमुपैष्यति । ततः राजाज्ञां श्रुत्वा सर्वे ग्राम जनाः यत्नेनतं वारिणं पुष्यंति रक्षन्तिच तथापि सः मातङ्ग मृतः । तदाते ग्राम वासिनः नितरांभय व्याकुलिताः भूत्वा परस्परं विचारयन्ति । हन्ति ! कोऽस्माकं मध्यादद्य राजग्नं गत्वा राजस्यं मरणं निवेदयिष्यति ?

अथयावत् ते एवं चिन्तंयति तावदेव कश्चिद् चतुरः ग्रामवासी तलागत्य अवदत् अलं भवता श्रुद्वेगेन । अहमेस्वयं गत्वा राज्ञे वृत्तान्तमिमं निवेदयिष्यामि । इत्युत्तवा सः नृपस्यान्तिकं गत्वा आह-देव ! अद्य हस्ती न निषीदति नोत्तिष्ठति, न केवलं गृहणाति न च नीरे पिबति नोच्छवसति । किं बहुना ? न सः सचेतम् इव आचरत्यद्येति । राज्ञोक्तम् - किं रे हस्ती मृतः ? सः पुरुषः आह-देव ! भवान् एव कथयति नं वयं तदा राजा तस्य वचन पारवेन परितुष्टः तस्मै प्रभूतं पारितोषिकं दत्वा तं व्यसृतत् ।

सुवर्णहंस कथा

राजीव गुप्त (सप्तम कक्षीय)

पुरा वाराणस्यां ब्रह्मदत्तो नाम राजाऽऽसीत् । तस्य राज्य काले भगवान् बोधिसत्तवः ब्राह्मण कुले अजायत । तस्य एका पत्नी तिसुः कन्य कान्चासन् । गच्छति काले मृतो बोधिसत्तवः जन्मान्तरे सुवर्णमयो हंसः जातः । अथै कदा जन्मान्तरीयायाः कुटिम्बिन्याः दुःखमवगत्य तस्याः क्लेशं मोचपितुं सः तद् गृहं गतवान् । अथ सः तस्यै प्रतिदिनं पिच्छमेकं प्रदत्तवान् अथैकदा ब्राह्मणी अचिन्तयत् को विश्वासः पक्षिषु ? यदि कदापि सः आगभनेन विमुखः भवति तदा किं करिष्यामि ? भवतु स्वर्णानि पिच्छानि अहमेक वारमेव ग्रहणासि । एवं चिन्तयित्वा तया हंसस्य सर्वाणि पिच्छानि उत्पाटि तानि । अहो ! किमाश्चर्यम् ? सर्वाणि पिच्छानि हिरण्भयानि नासन् दुखिता ब्राह्मणी पश्चातापं अकरोत् हसंस्तु न पुनस्तत्रागतः ।

विद्याधनं सर्व धनम् प्रधानम्
जलविन्दु निपातेन ऋमशः पूर्वतेघटः (नीति शतक)

ENGLISH SECTION

STUDENT EDITOR

PRAKASH SHARMA

CONTENTS

Sl. No.	What	By whom	Where
1.	I Vow to thee my country.		1
2.	A flower plucked before time.	Navneet Agarwal, Class VIII 'A'	2
3.	Our great leader Shri Lal Bahadur Shastri	Hari Kant Mishra, Class X 'A'	5
4.	A great Indian Scientist Dr. Bhabha	Ramesh Gupta, Class IX 'B'	7
5.	Nepal	Prakash Sharma, Class X 'A'	8
6.	What I want to be	Navneet Agarwal, Class VIII 'A'	11
7.	Swami Ram Krishna	Vinod Agarwal, Class X 'A'	13
8.	The Aim of Education	Durgesh Kumar, Class XI 'A'	18
9.	Science in Ancient India	Jitendra Kumar, Class XI 'A'	20
10.	Patriotism	Ajaya Kumar, Class X 'A'	23

I Vow to Thee My Country

I vow to thee my country,

All earthly things above,

Entire and whole and perfect,

The service of my love.

The love that asks no question,

The love that stands the test,

That lays upon the altar,

The dearest and the best.

The love that never falters,

The love that pays the price,

The love that makes undaunted

The final sacrifice.

"A Flower Plucked Before Time"

[Navneet Agarwal, VIII-A.]

(A fascinating life-sketch of Din Dayal Upadhyaya, after whom the institution is known, by a young promising writer, it tells us how a flower had been plucked by the cruel hands of fate, before it fully bloomed.)

"So young, so fair
Good without effort,
Great without foe."
—Byron.

Pt. Din Dayal Upadhyaya was one of those personalities who even after death are deemed immortal. He was not born with a "silver spoon in his mouth." It was the sterling qualities of head and heart, with which he was amply endowed, that made him shine in later life.

When he started his life, he had neither wealth nor rank, nor other facilities yet he rose to the front rank of Indian Politics.

Din Dayal was born on Sept. 25th 1916, (13, Krishna Bhadrapad 1973 Vikrami) in the village of Dhanakia on Jaipur - Ajmer line, where his maternal grand father Shri Chunni Lal Shukla was working as a Station Master. His father Shri Bhagwati Prasad a resident of Village Farah in district Mathura, was at that time the Station Master of Jalesar Road. His paternal grand father Shri Hariram Shastri, was a famous astrologer. Bhagwati Prasad passed away, when Deenu (Dindayal)was less than 3 years old. With his mother he went to his maternal uncle's home. But before he was eight, he lost his mother too. In this way he became an orphan. The death of his parents at such an early age made him very meditative and sensitive. He did his matric from Kalyan High School, Sikar (Rajasthan) and got first class first at the High School Examination of Ajmer Board. He was awarded a Gold Medal each by the Board and the school. Two years later he stood first in the Intermediate Examination too. Again he won two Gold Medals-one from the Board and the other from the College. It seemed as if Din Dayal was determined to stand first always. He passed B. A. examination from S.D. College, Kanpur in first class. Panditji joined, M.A. but he had to give up studies in mid way on account of the illness of his sister. He went Allahabad, where he did

L. T. When Rashtriya Swayamsewak Sangh came to U.P., Panditji was one of the first few to join it. As soon as he had completed his education he decided not to take up any job. He determined to serve his country all his life. Beginning as a District Pracharak in Lakhimpur, U.P. in 1942, he rose within 5 years to be the joint Provincial Pracharak, next only to Shri Bhaurao Deoras. In 1951, he joined the Bhartiya Jan Sangh. In 1951, he became the State Secretary of BJS.

At Kanpur session of BJS Dr. Shyama Prasad Mukerji made him General Secretary of BJS., Dr. Mukerji was so impressed with his organising ability and eloquence that he said, that if only he had two more Din Dayals he could transform the political face of India.

Unfortunately, Dr Mukerji passed away soon. Now the responsibility of organising BJS and transforming the face of politics fell on Din Dayal himself. In his leadership BJS achieved a great success. Jan Sangh emerged as number two party in the country. Although he rose to be an all India Leader, yet he washed his clothes with his own hands. He was so simple that his banyans would go to shreds before he agreed to replace them. *He did not shout Swadeshi, but he would never buy Videshi.*

As Editor of 'Panchajanya' (Weekly) and' Swadesh' (Daily), in Lucknow he not only edited but sometimes he composed the matter, tended the machine, despatched the parcels, in short did every kind of work pertaining to the press. Feeling the necessity of Swayamsevaks, he had written a novelette, Chandragupta Maurya. Later he also wrote a Hindi biography of Shankeracharya. He translated the Marathi biography of Dr. Hedgewar, the founder of RSS, in Hindi.

Though very ordinary in appearence, he was extraordinary in every thing else. A few months before he died, he presided over the Calicut Session of the BJS. Many problems came across his life, but he faced them courageously and firmly. *He was never an M. P. himself but made others M. P's.* And yet no body ever heard him speak of himself or his efforts. The word, 'I,' seemed to be a taboo with him. As Shri Yagyadutt put it, "his life was a sacred Triveni in which fame was as non-existent as the Saraswati at the Sangam. While Rajas and Satwa were deep and wide as the Yamuna and the Ganga."

In 1963, Pandiji was invited to visit U.S.A.,but the thoughtless Reserve Bank of India would not issue him "P" form. But on the intervention of Nehruji, Panditji got the form. He visited Europe and Africa also. He gave unforgettable impressions to those countries. His principal subjects had been Mathematics and Sanskrit, but he realised the importance of Economics in the modern world, so he privately studied this subject so thoroughly that he understood it better than any economic theoretician. His most important contribution to economic thought was Integral Humanism i. e. integeration of the four pursharthas- Dharma, Artha, Kama and Mokchha inrelation to the socio-economic problems of today.

At Calicut Session of the BJS, he was elected President. But soon after this event when he was travelling from Lucknow to Patna, an ignorant man killed him. His dead body was found lying beside the Rly. line in Moghalsarai yard. When the news of death spread, the whole country was moved to tears.

Shakespeare has somewhere said, "*Those whom God loves die young*." It was cent percent true in his case.

On this great session of BJS a renowned news paper of India, "Motherland" wrote, "It appeared as if the Ganga had changed its course and began to flow through Kerala." Jan Sangh arrived in the south with a big bang. It was in this great hour of his trumph, that he was murdered like Rishi Daya Nand, Swami Shradhanand, Shri Shyama Prasad Mukerji and Mahatama Gandhi before him.

Home Minister Chavan, saluted him as an "Ideal Indian," Balasaheb Devras described him as an Ideal Swayamsewak and compared him to Dr. Hedgewar. Hiren Mukerji, called him "Ajatashatru" and Acharya Kriplani saw in him "A man of Godly qualities." Like Dadhichi, he gave his very bones in the service of his country. Such was Din Dayal. His name will always be glorifying the pages of our history. He was only 51, when his life was cruelly cut short before it could fully blossom forth. God alone konws what heights he would have reached by dint of his utter selfless devotion, wonderful organising capacity, magnetic personal charm and extraordinary intellectual acumen, had he been with us today.

"Our Great Leader Shri Lal Bahadur Shastri"

(**Hari Kant Mishra, Class X-A, Sanskrit.**)

(The young writer tells us why of all the great leaders he chooses the meek and humble Lal Bahadur Shastri as his hero. Does it not give us an inkling into the writer's own character ?)

Of choosing leaders there is no end. But as for myself, Shri Lal Bahadur Shastri is my favourite leader. He was born on October, 2, 1904 in Moughal Sarai, a town of U. P. He was born in a middle class family. He was brought up in the cradle of poverty.

Shri Lal Bahadur Shastri's father who was a teacher of a middle school died when Lal Bahadur Shastri was only one and a half years old. His mother brought him to Mirzapur to her father's home. Lal Bahadur Shastri was educated there. When he grew up he came to Varanasi to study at Harish Chandra High School. Some times he had no money and he used to cross the river swimming.

Later on he got his education at Kashi Vidyapeeth, which was founded by Shri Shiva Pd. Gupta. He passed "Shastri" examination from there. He could not see the sufferings of his countrymen. He was deeply moved to see his countrymen neck deep in poverty. Thus he jumped into the sea of Indian Politics. In course of time by dint of his hard work and patriotism, he rose to be a great leader. He went to jail a number of times, but he worked hard regularly for his mother land. He fought against foreign rulers.

He joined the Congress and worked hard with his other leaders who were organising the national movement. Soon after India achieved freedom, he was made the Home Minister of Uttar Pradesh. After this he was made the Railway Minister. Once upon a time a Railway accident took place, Shri Lal Bahadur Shastri resigned taking the whole blame on himself. Thus there was the great spirit of sacrifice in him.

After Nehru's death, he was made the Prime Minister of free India. He did his work very well, and rose from his humble origins to the Top Most position of the land. The Indo-Pak. War of 1965, was successfully fought in his leadership when he had to face many grave crises like food. During this war he gave the country a brave and dedicated leadership. He died at Tashkent on Jan. 11, 1966. Our motherland lost

one of her most faithful and dedicated son. The whole country mourned his death. He got much fame which was due to him. His dead body was burnt at Vijaighat, Delhi. Shri Shastri was a born democrate and he was full of ardent patriotism. He was simple, strict, brave, honest and unselfish. He never cared for money. Like Sardar Patel he loved simplicity. He was the man of the people. He gave the nation a new and inspiring slogan, "Jai Jawan Jai Kisan". He won the war but died for peace His name will be written in the history of India in golden letters. In keeping his ideal of democracy and secularism alive, would perhaps be the best tribute that can be paid to the memory of this renowned patriot and noble son of India.

" The Great Indian Scientist, Dr. Bhabha "

(**Ramesh Gupta, IX-B**)

(Here is a pen-sketch of a great Indian Scientist, by a young science student. Let us hope Bhabha's life will inspire many a young hopeful to emulate him and to contribute to the glorification of the motherland)

Dr. Homi Jahangir Bhabha was born on October 3rd, 1909 in a Parsi family of Bombay. His father was a famous lawyer. He was intelligent in his student life. He had interest in science and music. Art also became a hobby with him.

After taking his degree in Engineering, he began, the study of Physics at the Cambridge University. He went to Zurich for the study of higher mathematics. From 1935 to 1939, he studied Physics at the Cambridge University. He was much interested in the study of Cosmic Rays, for the study of which he worked in the cosmic ray laboratory of Manchester.

On his return to India, he did his research at the Indian Institute of Sciences at Banglore. He contributed much to the establishment of Tata Institute of Fundamental Research.

When India became free and the Atomic Energy Commission was established, Dr. Bhabha was appointed its first President.

Later on Dr. Bhabha was honoured with the Paresident-ship of the International Conference on the Peaceful use of Automic Energy in 1955. The Scientists assembled there were very much impressed with the ideas expressed by Dr. Bhabha on this subject.

In 1956, Apsara Reactor was put into operation at Trombay. The credit of India's success in the field of Atomic Energy mainly goes to Dr. Bhabha. He gave much emphasis to the peaceful use of Atomic Energy. Unfortunately this great son of India died in a plane accident on the 24th January, 1966.

India will ever remain grateful to this great son of hers, who put her on the world map of Atomic Energy conscious countries. It was due to the foundations laid by him for research in Atomic Energy that India was later on capable of successfully performing the recent Atomic explosion at Pokharan, which has made India the sixth Atomic Power of the World.

" NEPAL "

(By Prakash Sharma, X-A, Biology)

(Here is an eye witness account of the mountaineous Hindu kingdom of Nepal, one of our neighbours. The writer was a member of the party that visted Nepal last year in October.)

Our neighbour Nepal which was a part of our Mother India's body in ancient times is now a free independent country like India. It has however, many intimate relations with India at this time also.

The Nepalese say that Nepal is and has always been an independent sovenrign State, blessed by the various Gods and Goddesses of both Hindu and Buddhist pantheous, cherished and protected by a galaxy of illustrious Kings such as Yalambara and Stunko of Kiranata-dynasty, Manu Deva and Anshuberma of Lichavi dynasty. Pratapa of Mulla dynasty and Prithi Narain, Tribhuwan and Mahendra of Shah dynasty.

In Nepal the administrative system is like that of the olden times. There is no President or Prime Minister but only the King who is the master of the country. Whatever the king orders all the Governers have to do. The Napalese live like the Indian People. The culture of the country is influenced by two great religions Hinduism and Buhdhism. Both the religions have co-existed and have drawn inspirations from each other through the ages. Hinduism can be seen in Nepal every where in every city, in every village. The Nepalese believe in Hindu as well as Buddhist culture. We can see the Sign Boards hanging across the shops and the name plates on the big buildings, written in Devanagri script. This shows their love for Sanskrit and Hindu culture. In India, a State or Province is called Pradesh, but in Nepal it is called "Anchal". These provinces are mostly demarcated by rivers flowing across the country. For example, the area between the Bhagmati and the Naraini is called Naraini Anchal, and on the other-side of River Bhagmati, is called Bhagmati Anchal. The short names on the number plates are like this (बा० अ० १९२३ and so on) बा० for Bhagmati and अ० for Anchal. Even the numerals like one, two three etc. are written in Devnagri. The People of Nepal pray to the Lord Buddha or to Lord Pashupati Nath or any other God or Goddess of Hindu Dharma, like Durga, Vishnu, Laxmi etc. We can see Hindu temples

in a large number in every city. Rules of entry into these Temples have been laid down and are strictly followed. It is a rule that only Hindu, whether Indian or Nepalese can enter a temple, other foreign travellers cannot. They can only have a look from outside the temple. This shows the love for Hinduism in the hearts of the Nepalese. The Nepalese have also love for their country. One could not say any thing disrespectful to their country. There is also a law for Royal succession that after the death of a king his son has to worship Lord Shiva in the Temple at Rameshwaram in South India. He cannot ascend the throne unless he does so. Thus we see that Hinduism is the State religion of Nepal though people can pray to Buddha also and believe in Buddhism. Incidently Lord Budhha was born at Lumbini, which is situated in Nepal.

Hinduism is reflected in the festivals of the Nepalese. Most of their festivals are carbon copies of the Hindu Festivals, celebrated in India.

(1) **Nava Varsha :** The Nepalese New Years Day (1st Bhaisakhi) fall in mid April. On this day Ling Jatra festival is held in the city of Bhadgoan. Two Chariots are drawn throughout the city.

(2) **Baisakh Purnima :** It is the day of Lord Buddha's Birth. It is celebrated with joy in all the Buddhist shrines and Monasteries of the Country.

(3) **Cow Festivals :** A Carnival type of festival is held in Kathmandu valley during the month of August. It lasts for three days. Dancing singing indulging in helarious humour are the spectacular phenomena.

(4) **Indra;Jatra :** This festival lasts for eight days. The chariot of the living goddess Ganesh and Bharon are drawn in Kathmandu. Images of Indra are exhibited througout the city. Cultural dances are held.

(5) **Durga Puja :** It is celebrated all over the country and is held in the month of October. People visit shrines of Bhagwati Durga.

(6) **Tihar :** It is the festival of light. This festival lasts for five days. The festival is observed in the honour of Laxmi the Goddess of Wealth. All the houses are illuminated with light at that night.

(7) **Basant Panchmi :** It is celebrated in honour of the advanee of the spring season. Saraswati the Goddess of learning is worshipped on this day. The people worship the token of learning, such as books, pens, ink etc. The festival is celebrated by singing the hymns of Saraswati and a special type of song Composed in Basant Rag are sung by the Ustad's or Master Singers.

(8) **Shivaratri :** It is celebrated as a night of Lord Shiva (God of Destruction). A great fair takes place at the temple of Pashupati Nath. A large number of devotees from

all over Nepal and India visit the temple

(9) **Rashtriya Prajatantra Divas :** (National Day) It is celebrated all over the Kingdom with great enthusiasim. On the 7th day of Falgun 2007, the Nepalese by his late Majesty King Tribhuwan, over threw the age old auto Cratic Regime of the Ranas. Parades, procession and other celebrations takes place in the most spectacular manner, on this occasion. Risbhuwan Jayanti is also observed on this day in memory of his late Majesty King Tribhuwan who successfully led the revolution of 1950-51 and installed democracy in the country.

(10) **Holi :** The festival of Colours is a festival of fun and frolic of sprinkling coloured water on people and smearing their faces with coloured Powder (Gulal).

(11) **Ghoda Jatra :** The festival of the Horse race is held in April. Many sporting events also take place on this occasion. It is a type of Sports festival.

The culminating point of the Nepalese scene, is of course the mighty Himalayas the home of perpitual snow, which includes the world's highest peak. Sagar matha (Mt. Everst) which is more than 29,000 ft. high. Other peaks in Nepal higher than 24,000ft. are Kanchenjangha, Dhaulagiri, Annapurna, Makalu etc. In Nepal there is the largest number of peaks which have never failing river system like the Kosi-Gandak system etc. This has made Nepal a land of scenic beauty.

It is a country of patriotic people. They are therefore religiously and culturally nearest to us, but unfortunately owing to our tactlessness Nepal is gradually coming under the influence of foreign powers like China, America etc. It is however for the freedom loving Nepalese to see that their beloved country does not fall a prey to foreign diplomacy and retain its identity as a self respecting country in the world. We Indians can only assure them that they will not find a greater friend and well wisher than India.

" WHAT I WANT TO BE ? "

(**Navneet Agrawal, Class, VII-A**)

(It is interesting to see, how this young writer, himself, son of a one time Education Minister, aspires to bring about reform in the much malignd educational set up of our country.)

He who wants to be successful in his life, should have a motto before him, he is like a rudderless boat, which sails at the mercy of the winds. If he does not decide his aim of life, what will be the purpose of his activities ? If he has great abilities, how will he use them ? It is therefore essential that every body should think what he should do in his coming days.

The value of our life depends on the nature of our aim or purpose of life. The nobler is the aim the higher is our life. If our aim is merely to acquire creature comforts for ourselves and our family, we are not different from animals, for animals too live for themselves or for their families. We as man should have a broader and higher vision. We should think about the society or country, to which we belong and to which we are indebted. As a matter of fact for all our mental, moral and spiritual attainments as well as physical possessions, we are indebted to the society, to which we belong, in which we live and have our being. We are thus individually products of the society. Our aim therefore should be to repay this debt, which we can do only by making service of the society or the nation, the aim of our life.

In my opinion, education is the first requisite for our Country, because our country is a Democratic country, and education is very necessary for a democratic country. Education is the most important need of a country, but for a democratic country, it is just like breath. Only educated citizens can build a successful democracy. In comparison with an uneducated man, an educated man is more aware of his rights and duties.

Education removes the vices of a man. It gives people good habits, manners and it makes a man humble and sensitive. It can change a vulgar man into a cultured one. But to-day we see that there are many defects in our education. Teachers and educated officers are responsible for this. The student is not at all responsible for this, because

the student is merely a product of the educational system prevaling in the country. The progress of the student is in the hands of a teacher, who teaches him. If the teacher does not perform his duties well, what will he teach and what kind of student will he produce ? Many parts of country neglect education also, therefore we will have to spread education for making our country strong.

I have decided to do something in this line. I will be a leader or M. P. of an independent party and will try to promote education in every way. I am determined to reform the defects of the educational system in our country. To achieve my aim, I shall remove every obstacles. May God and my Teachers help me to reach my aim.

Swami Ram Krishna Paramhansa

(**Vinod Agarwal, X 'A'**)

The writer, a student of Class X, has tried to give a life sketch of the great Gods-man of modern India, Swami Ram Krishna Paramhansa after reading the masters bigger biography by one of his direct disciples. The great Guru of one of the makers of modern, Swami Vivekanand, stands out in bold relief in this juvinile essay.

Shri Ram Krishna Paramhansa, the God-man of modern India was born at Kamarpubur. This village is situated in the Hoogly district of Bengal untouched by the glamour of city life. A high way to Jagannath Puri passes through this village. Shri Ram Krishna was known in his childhood as Gadadhar, "the bearer of the Mace", a name of Lord Vishnu.

His parents were Khusiram Chattopadhyaya and Chandra Devi. It was the morning of February, 18th, 1836, when this child, who was to be known as Ram Krishna later, was born.

Gadadhar grew up into a healthy and restless boy, who delighted in playing pranks. He was very intelligent and possessed a prodigious memory for hymns of God and Goddesses. He got his first education at the village school. He took interest in painting and clay modelling. But Arithmetic was his great aversion.

When Gadadhar was seven years old, his father died. This happening affected him very much. After his father's death he began to give attention to his studies and listening to the stories of the Puranas. After this he began to be interested in visiting the pious pilgrims who would stay at Kamarpubur on their way to Jagannath puri.

At the age of nine, Gadadhar begin to worship "Ragubir." Thus he gave his heart and soul to the worship of God.

At the age of sixteen years, his elder brother Ram Kumar opened a Sanskrit academy, to earn some money and to turn his younger brothers mind to education. Gadadhar's worship was very different from that of the professional priests. He would devote hours to decorating images and singing hymns and devotional songs. But to his studies, he paid scant attention.

At first his brother did not oppose his ways, but one day he decided to warn the boy about his indifference to the world. He advised Gadadhar to pay more attention to his studies. But he replied, "Brother, what should I

do with a mere bread - winning Education?"

In Dakshineswar a rich widow built a temple of Kali. Gadadhar wanted to be a priest, because his brother Ram Kumar was also a priest.

In 1856, Gadadhar's brother breathed his last. Then he understood how inpermanent life is on the earth, but he did not give up singing religious songs.

He built a place on the Northern Sidė of the temple for the worship of God. There he planted five sacred trees. This place is still known as Panchavati and many people still come there to visit this spot.

Now, Gadadhar was twenty three years old. His mother thought of arranging his marriage. Sarda Mani a little girl, of five was selected as the bride for him. Thus he married and after about a year and half he returned to Dakshineswar.

There came to Dakshineswar a Brahmani, Gadadhar welcomed her with great respect. She listened to Gadadhar attentively and said, "O, my son, every one in this world is mad. Some are mad for money, some far creature comforts, some for name and fame, and you are mad for God". She openly declared Gadadhar an incarnation of God. Some people doubted it.

Then the Brahmini called a meeting of Scholars, who would discuss the matter with her. Two famous Pandits were invited. After much discussion with the Brahmini, they agreed with her.

In 1864, Dakshineshwar was visited by a wandering monk, called Jatadhari, whose ideal diety was Ram. He had a small metal image of his diety, which he called Ramlala. Shri Ramkrishna was much impressed with the request of Jatadhari to spend a few days at Dakshineswar. He agreed and Jatadhari became the favourite companion of Ramkrishna.

Totapuri, the head of a monastery in the Punjab, who claimed leadership of seven hundred Sanyasis, one day came there. They all were trained in the discipline of Vedanta. Totapuri discovered atonce that Shri Ramkrishna was prepared to be a student of Vedanta. Shri Ram Krishna agreed to the propsal with devine mother's permission. But Totapuri said that only a Sanyasi could receive the teaching of Vedanta.

Now Shri Ramkrishna appeared to others as a normal person. He had not read the books, yet he possesed knowledge of the religious philosphies. He said, "I have not read books. I have heard. I have made a garland of their knowledge, wearing it round my neck and I have given it as an offering at the feet of the mother'." Now, many souls began to visit Dakshineswar to satisfy their spiritual hunger.

Towards the end of 1866, he began to practise the disciplines of Islam. He forgot the Hindu Gods and Godesses and also gave up visiting the temples. Thus

he realised the Muslim God. His prayers took the form of Islamic devotion.

After eight years in November 1874, he was seized with an irresistible desire to learn the truth of Christian religion. He began to listen to the readings from the Bible. Shri Ram Krishna became fascinated by the life and teaching of Jesus, whom he regarded as an incarnation of God. He did not set foot in the Kali temple for three days. But Christ for him was not the only uncarnation. There were others also for instance, Buddha and Krishna.

Sri Ramkrishna accepted also the divinity of Buddha. He also accepted Jainism, whose founders were Tirthambers and also the ten Gurus of Sikhism. Thus Shri Ramkrishna followed the different religions, but he did not get any special matter in any religions. "I have practised," said he "all the religions, Hinduism, Islam, Christianty, and I have also followed the paths of the different Hindu sects." He said also that one who is called Krishna is also called Shiva, Jesus, Allah. God is one, but he has his many names. After this he became a Master.

In 1837, Shri Ramkrishna returned to Dakshineswar. All people became very pleased to get back their playful, truthful, kind hearted and frank Gadadhar. His wife Sarda Mani, who was fourteen years old also reached Kamarpubur. His spiritual development was much beyond her age. But now she was able to understand her husband's state of mind.

On January 27, 1868, Mathur Babu, a disciple of Ram Krishna went on a pilgrimage to the sacred places of Northern India. One hundred and twenty five persons were with him. Shri Ram Krishna also accompanied Mathur Babu. He visited Allahabad at the confluence of the Ganga and Jamuna proceeded to Brindaban and Mathura. There he said, "O ! Krishna every thing is here as it was in the olden days. You alone are absent." He there met a great woman Ganga Mai.

In 1872, Sarda Devi paid her first visit to Ram Krishna at Dakshineswar. She had seen him at Kamarpubur four years before. Now though she had many rumours about her husband's insanity, she thought that she would help him. She was eighteen years old. She reached Dakshineswar on foot. When she arrived at the temple, he said sorrowfully, "Ah ! you have come too late."

The Master took up the duty of instructing his young wife. He taught her how to trim a lamp and how to conduct herself before visitors. He instructed her in spiritual prayer mediation and samadhi Sarada Devi received the first lesson that God is every body's beloved. Thus Ram Krishana and his wife Sarada Devi lived together at Dakshineswar.

Now Sarada Devi said, "I have no words to describe my wonderful exaltation of spirit as I watched him in different moods".

Once Narendra, who later on was known as Swami Vivekananda came to Dakshineswar to Shri Ram Krishna. At his request Narendra sang a few songs. Hearing his songs the Master went into Samadhi. After some time when he borke his Samadhi he siad to Narendra, "Ah, you have come very late. Why have you been making me wait all these days? My years are tired of hearing the futile words of wordly men. Oh, how I have longed to pour my spirit into the hart of some one fitted to receive my message."

When Narendra took leave, he asked him to come alone again and very soon. Narendra thought "What is this? I have come to see him. He must be stark mad. Why I am the son of Vishwa Nath Dutta. How dare he speak in this way to me.

Again when Narendra went there, Narendra asked him a question, "Sir, have you seen God?" The saint replied, Yes. I have seen God. I have seen him more tangibly than I see you. I have taked to him more intimately than I am talking to you. People shed Jugs of tears for money, wife and child. But if they would weep for God for only one day they would surely see him." Narendra was amazed, he could not, doubt.

When Narendra went there next time, suddenly at the touch of the Master, Narendra felt overhelmed and saw the walls of the room and everything around him, whirling and vanishing. He cried in terror "What are you doing to me? I have my father and mother at home". The Master laughed and restored him.

But during his next visit Narendra fared no better. This time at the Master's touch he lost consciousness entirely. When he was still in that state, Sri Ram Krishna questioned him about his mission in this world and the duration of his mortal life. The answer confirmed what the Master had thought about Narendra that he was a sage who had already attained perfection.

One day in January 1884, the Master was going towards the Pine groves when he went into a trance. He was alone. There was no one to guide his footsteps. He fell to ground and dislocated a bone in his left arm.

In April 1885, the Master's throat became inflamed, flowing of the blood into the throat would aggravate his pain. The annual Vaishnava festival was celebrated at Panihati. He attended it against the doctor's advice. The illness took a turn for the worse. The patient was cautioned against conversation and ecstasies.

In 1885, he went to Syampupur. Narendra organised the yong disciples to attend the Master's day and night.

At first he concealed the Masters' illness from them but after some time they remained with him constantly when his illness became more serious. Narendra received instructions regarding the propagation of his mission after his death. His mother also came

there and she also served him carefully. She would cook the food for him. She slept only three hours. Thus she spent three days.

On August, 15, 1886 the Master's pulse became irregular. All the disciples stood by the bed side. After a short time Sri Ram Krishna felt hungry. He took light food. Just after it he went into Samadhi of a rather Universal type. His body became stiff. After some time he cried the name of Kali. At two minutes past one, there was a low sound in his throat and he fell to one side. His hair stood to end. A thrill passed over his body. The final ecstasy began. It was MAHASAMADHI.

The Aim of Education

(**Durgesh Kumar, Class XI**)

An Ex-student of the institution tries to pin point the aim of education, in the light of his own limited experience gained during his two years stay at this Temple of learning. His attempt is laudable.

What the aim of education should be, is the burning question of today. In reality the aim of education is to awaken and develop the inner powers of man. In Vivekanand's words, "Do not say that you are impotent. It is a sin to say, so you are almighty." Really speaking we are very strong, but we are asleep and have forgotten our spiritual power. This forgetfulness of ours is unpardonable. It makes us feel that something is lost, but it is not clear, what it is and we wander about so long as we live as if in a swoon. This great thing, of which we are unconcious, is really our soul. We have almost denied its existence.

Although ever and anon a little happiness is felt for a while, yet at last sorrow, concern and anxiety fall to our share.

The soul is immortal and eternal beyond space and time. Setting aside this power, there is no happiness in the world. This very power is capaple of providing us real and eternal harmony and happiness.

For this attainment, there is mere one equipment essential,which is character and then every other requisite qualification is bound to follow.

Here the discussion of the curriculum is not necessary. This belongs to datas. But character is out of the approach of datas. We shall have to take character in a wider sense. Character is the aggregate of all the devine virtues like sympathy, love tolerance i.e. character makes man large hearted. Character requires a great aim, which makes character develop and furnish.

There have been and are taking place a lot of inventions to make life more comfortable but still man is not free from tensions, anxiety, various mental and physical oscillations, because these inventions cannot give him mental peace. Real happiness comes from within, not from outside. The way we live, think and behave with others makes for real happiness. In other words our thoughts and habits alone can lead us to happiness. The aim of education, therefore, should be character building.

In order to posses a good character, it is not necessary that one should be a reduse, cut off from society, for in social life alone, the flowers of character fully bloom.

We are all children of God. Service of God therefore, consists in the service of mankind. After helping some body, one should forget the service done for any one, but think that the person has accepted our petty and paltry service. We should be able to sympathise with our fellow men. Share their joys and sorrows.

We are fortunate that we have taken birth in this sacred motherland, for great souls are born in this land. They have discovered great truths of life. The fundamental and subline specialities is the spirit of a great accomodation with each other and second is tolerance, which has pervaded the very atmosphere of this holy land. We consider the entire universe as the manifestation of the Supreme Being, hence we see unity behind diversity.

Ultimately, therefore, we shall have to emphasise and apply the principle of oneness, then alone, progress will be possible in our country. This feeling of unity is the real basis of education.

Education based on this feeling of Unity can alone produce citizens, who will work in the harmony for the common good and lead the country to strength and prosperity.

Science in Ancient India

Jitendra Kumar, Class XI

Here is an interesting attempt by one of our Ex. student, who is now studying at an Intermediate College, to show that our fore-fathers were far advanced in science, when the people of the so called advanced countries, where modern science has reached its zenith roamed in jungles or dwelt in caves. Though one may not agree with him entirely, one cannot doubt his sincerity pains taking favour.

"Science is systematic knowledge of any thing"

—Spencer

If we know as much as we can about a thing, we can use that thing well. This theoretical and practical knowledge of the thing is called science.

In my opinion the more a country advances in science the stronger and richer will it become. All the World knows that we Indians very much strong and rich in ancient times. It means that our science was really much developed.

Religion leads us to God. It has been the very base of our culture. We cannot give it up. But Science is also necessary for our life. So our Rishies made Science part of our culture. We worship God, so we dedicate every ACTIVITY OF THE DAY TO GOD such as upvas or fasting, offering water to the Sun. Does our water reach the Sun? No then why do we offer water to the Sun? Because we regard the Sun as the greatest representative of God. But in reality as we look at the Sun while offering water to it, our eye sight is improved. Thus our Rishies combined science with religious practices. We fast on certain days like "EKADASHI" or "MANGAL" and we knew that occasioned abstaining from food is good for health. Thus there is scientific reasons for most of our religious pactices though we may not know it. For example, we use Shankh or Conch in Worship. The sound of the Conch kills many harmful bacteria. As we blow it forcefully it gives proper exercise to our lungs and thus makes them strong. A regular Shankh blower will never fell victim of T. B.. Why do we use Copper vessels in Worship? Because Copper is anti bacterial. So if we put water in a Copper Jug the water become free from bacteria. Why do we use the Skin of the deer and tiger for sitting in meditation or for worship? These Skins keep away harmful insects

nad preserve the energy of the devotee. His electricity is not allowed to pass into the earth. Why do we perform "Yagya" ? We pour Ghee and other aromatic and anti bacterial things into fire of "Yagya". The smoke and fumes of these things purify the atmosphere. Why do we pronounce "OM" ? Some time back some German Scientists made an artificial human body and made it pronounce "OM". The Scientists found that some such vibrations were produced in the air as were anti-bacterial and purifying.

Hindus use such things having deep scientific base. Why do we regard the milk of the Cow better than the milk of the Bufallow ? The milk of cow is more antiradio-active than the bufallow's and in every respect better for human health than any other milk. Why do we plaster mud houses with cow dung ? The cow dung is most anti bacterial and anti cosmic and radioactive rays. Why should we not eat meat, eggs and onion etc ? These things make a man sexy and excite him.

The ancient Hindus were not backward in any field. Prof. Wilson says, "India was the leader of the world in the various sciences".

In the field of mathematics many great mathematicians were born in Bharat, as Vanbhatta, Bhaskaracharia and Brahmagupta etc. Brahmagupta discovered the decimal system. Pythagorus Theorem was really discovered by Bhaskaracharia. Giratsam invented zero system. Aryabhatta was a great mathematician who made remarkable researches in Algebra.

In olden times we made the finest linen. We used many metals in our daily life a Copper, Zinc, Iron etc. Nagarjun was a great Chemist. He invented the method of converting mercury into gold. The modern scientists have not done it, as yet. Nagarjun said, "Chemistry can make man live for 300 Years". He made a very Powerful medicine called "Makaradhwaj". The iron pillar of Delhi is a great achievement of ancient metallurgy. For thousands of years it has been standing without being rusted. We knew about Enjymes. We knew how to analyse separate mixtures. We knew about acids.

We were well advanced in the field of Astronomy. The World accepted India as the mother of astronomy. There were many astronomers at that time in India as-Aryabhatta, Varamehir, Bodhayan etc. Aryabhatta discovered that the earth is spherical. It moves on its axis and explained the movements of Stars and planets. Our Rishies knew the distance between the earth and other Planets. We knew about the stars which are at a great distance from the earth.

We were not behind in the technical field as well. There were many skilful engineers in the ancient times like, Nal Neel, Vishwakarma, Bharadwaja. Neel and Nal made a bridge across the sea between India and Shri Lanka. It was wonderful feat of engineering, which is

quite impossible now a days. Bharadwaja was a great engineer of Machines and Aeroplanes. He wrote a book "Bharadwaja Sanhita". In this book he explained how to make many types of Aeroplanes. We were also famous for building Ships for navigations.

In Physics we were also famous in the World. There were many Physicists born in our country as Bhaskar-acharya, Brahmagupta, Kanad etc. Our ancient scientists knew about gravitation, many-many years before Newton. It was Brahmagupta who described the Principles of gravitation and Bhaskaracharya explained the attractive force of the earth. Dalton was not the father of Atomic Science. In fact it was Maharshi Kanad who described the atom for the first time. He said, "Every substance is made of very tiny particles called Pilava !"

In the field of medicines we were very advanced. There were many doctors born in our country as Agnivesh, Bagbhatta, Dhanvanttri, Sushrut, Charak, Surpal, Shalihotra etc. The father of surgery, Sushrut was born in in our country. He was famous for artificial and plastic suggery. He wrote a book "Sushrut Sanhita". In this book he described many instruments which can be very well compared with modern Surgical instruments. He described the method of many operations as those of the intestines, Uterus, stones of Kidney and urinary bladder. There was an other great student Charak. Charak was the great Physician. He also wrote a book "Charak Sanhita". In this book he has described 2000 ailments and 500 planets. He was a specialist of heart and T.B. Charak Sanhita has been translated into many languages as English, German, Chinese and Arabic. Bhagbhatta was a great Pathologists. A chinese traveller I-Thiang appreciated his book Astanga hridaya. An older doctor Surpal was a doctor of plants. In the field of veterinary science another doctor was born. His name was Shalihotra. Our ancient science was very much advanced. Our cooking method was also very scientific.

" PATRIOTISM "

(Ajay Kumar, X A.)

Inspired by the famous poem of Sir Walter Scott, which heppens to find a place in his text book, the young writer has given vent to his feelings in this essay, which is quite laudable as the work of a high school boy in a foreign tongue.

Every creature loves its birth place. Have you ever thrust your hand into a warps' nest ? If you do so, a dreadful sting will send you away smarting and crying with pain. A fish too cannot live without water, which is its birth place. Similary other creatures also love their native place. It means that love for one's birth place is natural. To feel an attachment for the land on which we have played and grown up, to love the language, customs and manners of the society in which we have been brought up. To have a liking for the tree, plants, animals and surroundings of our native place is quite instinctive with us. This feeling is called patriotism. The man who does not have this natural feeling is worse than an animal, for even animals have this feeling of love.

Patriotism is very noble emotion. Is only the spirit of loving the nation the true definition of patriotism ? Never it is true that the spirit of loving the nation is essential, but it cannot be a perfect definition of patriotism. Patriotism is not merely the spirit or emotion of love, but also to work according to that emotion for the nation and to do one's duties for the country. A patriotic man loves his country so that he loves its culture, its customs and its food. In short, patriotism has no room for self centredness. What is the use of that patriotism which does not urge a man to sacrifice his personal interests for the country ? A patriot employs all his powers and wealth for the sake of the nation. If we want to be true patriots, we should be devoted to our duties. Without performance of duties patriotism is not possible. A patriot thinks that his own development depends on the development of the country and that the degradation of his country will lead to his own degradation.

Treachery is a curse for the nation. A traitor cannot get fame. There are such men, as were traitors to their country as Man Singh, Jay Chandra etc. For such a man, the famous English Poet, Sir Walter Scott says—

"For him no minstrel raptures swell;
High though his titles, proud his name,
Boundless his wealth as wish can claim.

Despite those titles, power and pelf,
The wreath concentred all itself,

Living shall forfeit fair renoun,
and doubly dying, shall go down,
To one vile dust from whence he sprung,
Unwept, unhonoured and unsung."

It means that a traitor gets double death and no body will pay respect to him.

The development of any country depends upon the patriotic men of that country. No country can be prosperous and strong unless the people of that country are patriots. There are many countries which where at first very backward and weak, but when the spirit of patriotism was awakened in the hearts of their people, they become prosperous and strong. A glaring example is that of Israel. .Owing to the patriotism of their peoples, now a days, England, America, Soviet Russia and China are at the peak. In the second World war, England showed how patriots can save their nation. The Air Force of Germany threatened to destroy England, the English People made Churchill, who was a great patriot, their leader. He said that our aim must be victory. The people of England were ready to face any danger or difficulty at that time. Then the children of England also played a patriotic role. They did not take sugar for tea as they knew that if they did so, they would have to import sugar from other countries and it would be fatal to do so for achieving victory. It was a patriotic spirit of sacrific, Consequently England got victory.

Like this there is an other example of patriotism of Israel. Though its rival was Egypt, which was helped by Russia & other Arab countries. The patriotic men of Israel faced Egypt and defended it.

The history of our nation is also full of examples of patriotism. There are many such men who have sacrificed their lives for the country as Maharana Pratap, Chandra Shekhar Azad, Bhagat Singh, Tatya Tope and others. All of these patriotic men are adornable for us. It was only the spirit of patriotism which, urged them lay down their lives for the sake of the nation.

Maharana Pratap had to eat grass and to suffer indescribable hardships. Bhagat Singh cheerfully went to the Gallows. Savarker was sentenced for life two times. It was only due to such patriots that our country became free.

Now we are free, but our nation is passing through crisis. Though we are free we depend on other nations for food. To make a nation free is no doubt patriotic but to develop the country and to make it strong and prosperous is even more patriotic. We should serve our nation in every field where ever our duty may take us. As doctors, Engineers, traders and so on. We shall be ever conscious of our duty to the nation. Then only we shall be true patriots.

आचार्य वृन्द

१. श्री चन्द्रपाल सिंह, एम. ए., बी. टी., साहित्यरत्न (प्राचार्य)

२. श्री शन्तनु रघुनाथ शेंडे, एम. ए., बी. एड.

३. श्री ओमशङ्कर, एम. ए., बी. एड.

४. श्री प्रयाग सिंह, एम. एस-सी., बी. एड.

५. श्री आनन्द प्रसाद वर्मा, आई. जी. डी. बाम्बे

६. श्री हेमन्त प्रसाद दीक्षित, एम. ए., बी. एड.

७. श्री प्रकाश नारायण बाजपेयी, एम. एस-सी., बी. एड.

८. श्री राजकुमार दीक्षित, एम. ए., बो. एड., शास्त्री साहित्याचार्य

९. श्री महेश चन्द्र श्रीवास्तव, बी. एस-सो., बी. एड.

१०. श्री गोविन्द नारायण मिश्र, एम. ए., बी. एड.

११. श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा, एम. एस-सी.

१२. श्री शिवस्वरूप मिश्र, एम. एस-सी., एम. ए., एम. एड.

१३. श्री विष्णु कुमार शुक्ल, एम. एस-सी., बी. एड.

१४. श्री इन्द्र कुमार सक्सेना, एम. एस-सी., बी. एड.

१५. श्री रमेश चन्द्र अवस्थी, बी. काम, एम. ए. (कार्यालय अधीक्षक)

पं. दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय

राष्ट्रे जागृयाम वयम्

कानपुर

नीराजन - परिवार :

- सहायक सम्पादक - ज्ञानेन्द्र शर्मा, राजकुमार दीक्षित
- छात्र संपादक - नवनीत अग्रवाल (हिन्दी)
  हरीकान्त मिश्र (संस्कृत)
  प्रकाश शर्मा (अंग्रेजी)
- मुखपृष्ठ एवं सज्जा : आनन्द वर्मा
- **संपादक - ओमशङ्कर**

भार्गव प्रेस, कानपुर ।